हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

सुमित्रानन्दन पत



राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली

झंकार

जब जीवन के स्रोत सम्मिलित
हो जाते हैं किसी प्रकार,
उन्हें नहीं तब बिछुड़ा सकता
सखे, स्वयं तारक करतार।

ग्रन्थि

वह मधुर मधुमास था, जब गंध से
मुग्ध होकर झूमते थे मधुप दल
रसिक पिक से सरस तरुण रसाल थे,
अवनि के सुख बढ़ रहे थे दिवस-से।
जानकर ऋतुराज का नव आगमन
अखिल कोमल कामनाएँ अवनि की
खिल उठी थीं मृदुल सुमनों में कहीं
सफल होने को अवनि के ईश से!

अस्तमित निज कनक किरणों को तपन
चरम गिरि को सौंपता था कृपण सा
अरुण आभा में रँगा था वह पतन
रजकणों सी वासनाओं से विपुल।
तरणि के ही संग तरल तरंग से
तरणि डूबी थी हमारी ताल में
सांध्य निःस्वप्न-से गहन जल गर्भ में
था हमारा विश्व तन्मय हो गया।

बुदबुदे जिन चपल लहरों में प्रथम
गा रहे थे राग जीवन का अचिर
अल्प पल उनके प्रबल उत्थान में
हृदय की लहरें हमारी सो गईं!

× × ×

जब विमूर्छित नींद से मैं था जगा
(कौन जाने किस तरह?) पीयूष सा
एक कोमल समव्यथित निःश्वास था
पुनर्जीवन सा मुझे तब दे रहा!
शीश रख मेरा सुकोमल जाँघ पर
शशि कला सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान मुख मेरा अचल
सदय भीरु अधीर, चिन्तित दृष्टि से!

इन्दु पर, उस इंदु मुख पर साथ ही
थे पड़े मेरे नयन जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे—पूर्व को
पूर्ण था पर वह द्वितीय अपूर्व था!
बाल रजनी सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में
अचल रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में!

एक पल मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,

चपलता ने इस विकंपित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय संबंध था।
लाज की मादक सुरा सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से,
छलकती थी बाढ़ सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से सीप-से!

(इन गढ़ों में—रूप के आवर्त-से—
घूम फिर कर, नाव-से किसके नयन
हैं नहीं डूबे भटक कर, अटक कर,
भार से दब कर तरुण सौन्दर्य के?)
घूमग लगता है गुलाब सहम सदा,
क्या उषामय का पुम कहना भला?
लालिमा ही से नहीं क्या टपकती
सेब की चिर सरसता सुकुमारता?
पद नखों को गिन समय के भार को
जो घटाती थी भुलाकर, अवनितल
चूम कर, वह चढ़ पलों की धृष्टता
थी वहाँ मानो छिपाना चाहती!

× × ×

इंदु की छवि में, तिमिर के गर्भ में,
अनिल की ध्वनि में सलिल की वीचि में
एक उत्सुकता विचरती थी, सरस
सुमन की स्मिति में, लता के अधर में!

याद है मुझको अभी वह घड़ समय
ब्याह के दिन जब विकल दुर्बल हृदय
अश्रुओं से तारकों को विजन में
गिन रहा था, ध्वस्त हो, उद्भ्रांत हो !

हाय रे मानव हृदय ! तुमसे जहाँ
वज्र भी भयभीत होता है वहीं
देख तेरी मृदुलता शिशु सुमन भी
सकुचित हो सहम जाता है सदा !
ग्रंथि बंधन !—इस सुनहली ग्रंथि में
स्वर्ग की माँ विश्व की मंगलमयी
जो अनोखी चाह जो उन्मत्त धन
है छिपा वह एक है, अनमोल है !

सौदामिनि ! जाओ, मिलो तुम सिंधु से,
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन को
चंद्रिके ! चूमो तरंगों के अधर
उडुगणो ! गाओ पवन-वीणा बजा !
पर, हृदय ! सब भाँति तू कंगाल है,
उठ किसी निर्जन विपिन में बैठ कर
अश्रुओं की बाढ़ में अपनी बिकी
भग्न भावी को डुबा दे आँख-सी !
देख रोता है चकोर इधर, वहाँ
तरसता है तृषित चातक वारि को,

वह, मधुप बिंध कर तड़पता है यहीं
नियम है संसार का रो हृदय, रो!

× × ×

छि: सरल सौन्दर्य! तुम सचमुच बड़े
निठुर औ' नादान हो! सुकुमार, यों
पलक दल में तारकों में, अधर में
खेल कर तुम कर रहे हो हाय! क्या?
जानते हो क्या? सुकोमल गाल पर
कुंज अँगुलियों पर कटी कटि पर छिपे
तुम मिचौनी खेल कर कितना गहन
घाव करते हो सुमन-से हृदय में!

औ' अकेले चिबुक तिल से कुछ उठी
कुछ गिरी भ्रू वीचि से कुछ-कुछ खुली
नयनता से कुछ रुकी मुसकान से
छीनते किस भाँति हो तुम धैर्य को?
मुकुल के भीतर उषा की रश्मि से
जन्म पा मधु की मधुरता धूलि की
मृदुलता, मृदु कटकों की प्रखरता,
मुग्धता ली मधुप की तुमने चुरा!

धीर, भोले प्रेम! क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों से? जहाँ
झूमते गज-से विचरते हो, वहीं
आह है उन्माद है उत्ताप है!

वेदना !—कैसा करुण उद्गार है!
वेदना ही है अखिल ब्रह्मांड यह
तुहिन में तृण में, उपल में, लहर में
तारकों में, व्योम में है वेदना!
वेदना !—कितना विशद यह रूप है!
यह अँधेरे हृदय की दीपक शिखा!
रूप की अंतिम छटा! इस विश्व की
अगम चरम अवधि क्षितिज की परिधि सी!

कौन दोषी है? यही तो न्याय है!
वह मधुप बिंध कर तड़पता है उधर
दग्ध चातक तरसता है—विश्व का
नियम है यह रो अभाग हृदय रो!!

× × ×

कौन वह बिछुड़े दिलों की दुर्दशा
पोंछ सकता है? युगों की बाढ़ में
विकल बिखरे बुदबुदों की बुझती
मौन आहें हाय! कौन समझ सका!
शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह!—अहह कराहते इस शब्द को
किस कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोंक से
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा!!

× × ×

प्रेम वंचित को तथा कंगाल को
है कहाँ आश्रय! विरह की वह्नि में

इटी बाँसुरी सुनहरी टेर

भस्म होकर हृदय की दुखम दशा
हो गई परिणत विरति सी शक्ति में!
सुहृद्वर! कंगाल कृश कंकाल सा,
भैरवी से भी सुरीला है महा!
किस गहनता के भ्रमर से फूट कर
फैसते हैं शून्य स्वर इसके सदा!

आज मैं कंगाल हूँ—क्या यह प्रथम
बार मैंने ही कहा? ओ हृदय! तुम
बह रहे हो मुक्त इसके मोद में
भूल कर दुर्दैव के गुरु भार को!
मैं अकेला विपिन में बैठा हुआ
सींचता हूँ विजनता से हृदय को,
और उसकी भेदती कृश दृष्टि से
ढूँढता हूँ विश्व के उन्माद को!

विश्व,—यह कैसी मनोहर भूल है!
मधुर दुर्बलता!—कई छोटी बड़ी
भग्नताएँ जोड़, लीला के लिए,
यह निराला खेल क्या विधि ने रचा?
कौन सी ऐसी परम वह वस्तु है
भटकते हैं मनुज-गण जिसके लिए?
कौन सा ऐसा चरम सौन्दर्य है
खींचता है जो जगत के हृदय को?

सुमन दल में फूट पागल-सी, अखिल
प्रणय की स्मृति हँस रही है, मुकुल में
वास है अज्ञात मादी कर रही
आज मेरी द्रौपदी सी परवशा!

गर्व-सा गिर उच्च निर्झर स्रात से
स्वप्न सुख मेरा शिलामय हृदय में
घोप भीषण कर रहा है वज्र सा,
वात सा, भूकम्प सा उत्पात सा!
तारकों के अचल पलकों से विपुल
मौन विस्मय छीन कर मेरा पतन
निर्निमेष विलोकता है विश्व की
भीरुता को चन्द्रमा की ज्योति में!

तिमिर के अज्ञात अंचल में छिपी
झूमती है भ्रान्ति मेरी भ्रमर सी
चन्द्रिका की लहर में है खेलती
मग्न आशा आज शत शत खंड हो!
तिमिर!—यह क्या विश्व का उन्माद है,
जो छिपाता है प्रकृति के रूप को?
या किसी की यह चिनीरव आह है
खोजती है जो प्रलय की राह को!

या किसी के प्रेम वंचित पलक की
मूक जड़ता है? पवन में विचर कर,

पूछती है जो सितारों से सतत—
प्रिय ! तुम्हारी नींद किसने छीन ली ?
यह किसी के रुदन का सूखा हुआ
सिन्धु है क्या ? जो दुखों की बाढ़ में
सृष्टि की सत्ता डुबाने के लिए
उमड़ता है एक नीरव लहर में।

आह, यह किसका अँधेरा भाग्य है ?
प्रलय छाया सा अनन्त विषाद सा।
कौन मेरे कल्पना के विपिन में
पागलों सा यह भ्रमण है घूमता ?
हृदय ! यह क्या दग्ध तेरा चित्र है ?
धूम ही है शेष अब जिसमें रहा !
इस पवित्र दुकूल से तू दैव का
वदन ढँकने के लिए क्यों व्यग्र है।

उच्छ्वास

(सावन भादों)

(सावन)

सिसकते, अस्थिर मानस से
बाल-बादल-सा उठकर आज
सरल, अस्फुट उच्छ्वास !
अपने छाया के पंखों में
(नीरव-घोष भरे शंखों में)
मेरे आँसू गूँथ, फैल गंभीर-मेघ-सा
आच्छादित कर ले सारा आकाश !
यह अमूल्य मोती का साज
इन सुवर्णमय, सरस परों में
(शुचि-स्वभाव से भरे सरों में)
तुमको पहना जगत देख ले—यह स्वर्गीय प्रकाश !

मंद विद्युत-सा हँसकर
वज्र-सा उर में धँसकर
गरज गगन के गान ! गरज गंभीर स्वरों में
भर अपना संदेश उरों में औ अधरों में

है झाँक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष, अटल, कुछ चिन्तापर!

—उड़ गया, अचानक लो, भूधर
फड़का अपार वारिद के पर!
रव-शेष रह गए हैं निर्झर,
है टूट पड़ा भू पर अम्बर!
धँस गए धरा में सभय शाल!
उठ रहा धुँआ जल गया ताल!
—यों जलद-यान में विचर, विचर,
था इन्द्र खेलता इन्द्रजाल!
(वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल-घर!)

इस तरह मेरे चितेरे-हृदय की
बाह्य-प्रकृति बनी चमत्कृत-चित्र थी
सरल-शैशव की सुखद-सुधि-सी वही
बालिका मेरी मनोरम-मित्र थी।

(भावों)

दीप के बचे विकास!
अनिल-सा लोक में,
हर्ष में और शोक में,
कहाँ नहीं है स्नेह? साँस-सा सबके उर में!

हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

स्वन, क्रीड़न, आलिंगन,
भरण, सेवन, आराधन,
शशि की-सी ये कलित-कलाएँ किलक रही हैं पुर-पुर में।

मही तो है बचपन का हास,
किशोर-यौवन का मधुप विलास,
प्रौढ़ता का वह बुद्धि-विकास
जरा का अन्तर्नयन-प्रकाश।
जन्मदिन का है यही हुलास,
मृत्यु का यही दीर्घ-निःश्वास!

है यह वैदिक-वाद
विश्व का सुख-दुखमय उन्माद
एकसामय है इसका नाद —

गिरा हो जाती है सनयन,
नयन करते नीरव-भाषण
श्रवण तक आ जाता है मन
स्वयं मन करता बात श्रवण।

मधुओं में रहता है हास,
हास में अश्रुकणों का भास,
श्वास में छिपा हुआ उच्छ्वास,
और उच्छ्वासों ही में श्वास।

बंधे हैं जीवन-सार
सब में छिपी हुई है यह झंकार।

हैं झाँक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष, अटल, कुछ चिन्तापर !

—उड़ गया, अचानक लो भूधर
फड़का अपार वारिद के पर !
रव-शेष रह गए हैं निर्झर,
है टूट पड़ा भू पर अम्बर !
धँस गए धरा में सभय शाल !
उठ रहा धुँआ, जल गया ताल !
—यों जलद-यान में विचर, विचर,
था इन्द्र खेलता इन्द्रजाल !
(वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल घर !)

इस तरह मेरे चितेरे-हृदय की
बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी
सरल-शैशव की सुखद-सुधि-सी वही
बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।

(भावी)

दीप के बचे-विकास !
अनिल-सा लोक में,
हर्ष में और शोक में
कहाँ नहीं है स्नेह ? साँस-सा सबके उर में !

हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

स्वन क्रीड़न, मालिंगन
मरण, सेवन माराधन
दामि की-सी ये कलित-कलाएँ किसक रही हैं पुर-पुर में।
यही तो है बचपन का हास
खिले-यौवन का मधुप-विलास
प्रौढ़ता का वह बुद्धि विकाश
जरा का अन्तर्नयन प्रकाश।
जन्मदिन का है यही हुलास
मृत्यु का यही दीर्घ निःश्वास।
है यह वैदिक-वाद
विश्व का सुख-दुखमय उन्माद
एकतामय है इसका नाद —

गिरा हो जाती है सनयन,
नयन करते नीरव भाषण
श्रवण तक मा जाता है मन
स्वयं मन करता बात श्रवण।

मधुओं में रहता है हास,
हास में मधुकणों का मास,
श्वास में छिपा हुमा उच्छ्वास,
मौर उच्छ्वासों ही में श्वास।
बँधे हैं जीवन-तार,
सब में छिपी हुई है यह झंकार।
हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

हो जाता संसार
नहीं तो दारुण हाहाकार!
मुरली के से सुरसील
इसके हैं छिद्र सुरीले,
अगणित होने पर भी तो
तारों-से हैं चमकीले!

चपल हो उठते हैं चंचल
चपल बन जाते हैं अविचल
पिघल पड़ते हैं पाहन-दल
कुलिश भी हो जाता कोमल!

चढ़ाता भी है तो गुण से
डोर कर में है मन आकाश
पटकता भी है तो गुण से
खींचने को मन्दई-सा पास!

मर्म-पीड़ा के हास!
रोग का है उपचार,
पाप का भी परिहार,
है अवेह सन्देह नहीं है इसका कुछ संस्कार!
हृदय की है यह दुर्बल-हार!!

खींचलो इसको, कहीं क्या छोर है?
द्रौपदी का यह दुरंत-दुकूल है!

हरी बांसुरी सुनहरी टे

हो गया था पतझड़, मधुकाम
पत्र तो भाते हाय, नवल !
झड़ गए स्नेह-वृन्त से फूल
समा यह असमय कैसा फल !!

मिले थे दो मानस अज्ञात
स्नेह-शशि बिम्बित था भरपूर
अनिल-सा क्रूर अकरुण आघात
प्रेम प्रतिमा कर दी वह चूर !!

घूमता है सम्मुख वह रूप
सुदर्शन हुए सुदर्शन चक्र !
हास-सा रजवाला-शशि आज
हो गया है हा ! असि-सा वक्र !!

बालक का-सा मारा हाथ,
कर दिए विकल हृदय के तार !
नहीं अब रुकती है झंकार
यही था हा ! क्या एक सितार ?

हुई मरु की मरीचिका आज
मुझे गंगा की पावन-धार !

कहाँ है उत्कंठा का पार !!
इसी वेदना में विलीन हो अब मेरा संसार !
तुम्हें जो चाहो है अधिकार !
टूट जा यहीं मह हृदय हार !!!

कौन जान सका किसी के हृदय को ?
सच नहीं होता सदा अनुमान है !
कौन भेद सका अगम आकाश को ?
कौन समझ सका उदधि का गान है ?
है सभी तो घोर दुर्बलता यही
समस्या कोई नहीं—क्या सार है !
निरपराधों के लिए भी तो अहा !
हो गया संसार कारागार है !!

मेरा पावस ऋतु सा जीवन
मानस-सा उमड़ा अपार मन,
गहरे, धुँधले धुले साँवले,
मेघों से मेरे भरे नयन!
कभी उर में अगणित मृदु भाव
कूजते हैं विहगों से हाय!
अरुण कलियों-से कोमल घाव
कभी खुल पड़ते हैं असहाय!

इन्द्रधनु-सा आशा का सेतु
अनिल में अटका कभी अछोर
कभी कुहरे-सी धूमिल घोर,
दीखती भावी चारों ओर!

तड़ित-सा सुमुखि! तुम्हारा ध्यान
प्रभा के पलक मार उर चीर,
गूढ़ गर्जन कर जब गम्भीर
मुझे करता है अधिक अधीर,
जुगनुओं-से उड़ मेरे प्राण
खोजते हैं तब तुम्हें निदान!

धधकती है जलदों से ज्वाल
बन गया नीलम व्योम प्रवाल
आज सोने का संध्याकाल
जल रहा जतुगृह-सा विकराल!

पटक रवि को बलि-सा पाताल
एक ही वामन पग में—
लपकता है तमिस्र तत्काल
—धुँए का विश्व विशाल!

चिनगियों से तारों को डाल
आग का-सा अँगार शशि लाल
लहकता है—फैला मणि ज्वाल
जगत को डसता है तम व्याल!

पूर्व सुधि सहसा जब सुकुमारि!
सरल शुक-सी सुखकर सुर में
तुम्हारी भोली बातें
कभी दुहराती है उर में!

अगन-से मेरे पुलकित प्राण
सहस्रों सरस स्वरों में कूक
तुम्हारा करते हैं आह्वान
गिरा रहती है श्रुति-सी मूक!

देता हूँ जब उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिये! भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को!

नवोढ़ा बाल लहर
अचानक उपकूलों के

प्रसूनों के ढिंग रुक कर
सरकती है सत्वर।
अकेली आकुलता-सी प्राण!
कहीं तब करती मृदु आघात
सिहर उठता कृश गात,
ठहर जाते हैं पग अज्ञात!

देखता हूँ जब पतला
इन्द्रधनुषी हलका
रेशमी घूँघट बादल का
खोलती है कुमुद कला।
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे करता तब अन्तर्धान
न जाने तुमसे मेरे प्राण
चाहते क्या आदान!

बादलों के छायामय मेल
घूमते हैं आँखों में, फैल!
अवनि औ' अम्बर के वे खेल
शैल में जलद, जलद में शैल!
शिखर पर विचर मरुत रखवाल
वेणु में भरता था जब स्वर,
मेमनों-से मेघों के बाल
कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर!

द्विरद दन्तों-से उठ सुन्दर
सुखद कर-सीकर से बढ़ कर,
भूति-से शोभित बिखर बिखर
फल फिर कटि के-से परिकर,
बदल यों विविध वेश जलधर
बनाते थे गिरि को गजवर!

इन्द्रधनु की सुनकर टंकार
उचक चपला के चंचल-बाल
दौड़ते थे गिरि के उस पार
देख उड़ते विशिखों की धार,
मरुत जब उनको द्रुत पुचकार,
रोक देता था मेघासार!

अचल के जब वे विमल विचार
अवनि से उठ उठ कर ऊपर,
विपुल व्यापकता में अविकार
लीन हो जाते थे सत्वर,
विहंगम-सा बैठा गिरि पर
सुहाता था विशाल अम्बर!

पपीहों की वह पीन पुकार,
निर्झरों की भारी झर झर
झींगुरों की झीनी झनकार,
घनों की गुरु गम्भीर घहर,

गगन के भी उर में हैं घाव,
देखतीं ताराएँ भी राह,
बँधा विद्युत् छवि में जलबाह
चन्द्र की चितवन में भी चाह
दिखाते जड़ भी तो अपनाव
अनिल भी भरती ठण्डी आह!

हाय! मेरा जीवन,
प्रेम औ' आँसू के कन!
आह मेरा अक्षय धन
अपरिमित सुन्दरता औ मन!
—एक वीणा की मृदु झंकार
कहाँ है सुन्दरता का पार!
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि!
दिखाऊँ मैं साकार?
तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा स्नान!
तुम्हारी वाणी में कल्याणि
त्रिवेणी की लहरों का गान!
अपरिचित चितवन में था प्रात
सुधामय साँसों में उपचार!
तुम्हारी छाया में आधार,
सुखद चेष्टाओं में आभार!

करुण भौंहों में था आकाश,
हास में शैशव का संसार,
तुम्हारी आँखों में कर वास
प्रेम ने पाया था आकार!

कपोलों में उर के मृदु भाव
श्रवण नयनों में प्रिय बर्ताव
सरल संकेतों में संकोच,
मृदुल अधरों में मधुर दुराव!
उषा का था उर में आवास
मुकुल का मुख में मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों के साँस!
बिन्दु में थी तुम सिन्धु अनन्त
एक सुर में समस्त संगीत,
एक कलिका में अखिल वसन्त
धरा में थी तुम स्वर्ग पुनीत!

विधुर उर के मृदु भावों से
तुम्हारा कर नित नव शृंगार
पूजता हूँ मैं तुम्हें, कुमारि!
मूँद दुहरे दृग द्वार!
अचल पलकों में मूर्ति सँवार
पान करता हूँ रूप अपार,

भावी पत्नी के प्रति

प्रिये, प्राणों की प्राण!
न जाने किस गृह में अनजान
छिपी हो तुम, स्वर्गीय विधान!
नवल कलिकाओं की सी वाण
बाल रति सी अनुपम असमान—
न जाने, कौन कहाँ अनजान
प्रिये, प्राणों की प्राण!

जननि अंचल में झूल सकाल
मृदुल उर कंपन सी वपुमान,
स्नेह सुख में बढ़ सखि! चिरकाल
दीप की अकलुष शिखा समान,
कौन सा आलय नगर विशाल
कर रही तुम दीपित, द्युतिमान?
शलभ चंचल मेरे मन प्राण
प्रिये, प्राणों की प्राण!

हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

नवल मधुऋतु निकुंज में प्रात
प्रथम कलिका सी अस्फुट गात,
नील नभ-अन्तःपुर में, तन्वि!
दूज की कला सदृश नवजात
मधुरता, मृदुता सी तुम, प्राण
न जिसका स्वाद-स्पर्श कुछ ज्ञात,
कल्पना हो जाने, परिणाम?
प्रिये प्राणों की प्राण!

हृदय की पलकों में गति-हीन
स्वप्न संसृति सी सुषमाकार,
बाल भावुकता बीच नवीन
परी सी धरती रूप अपार
झूलती उर में आज, किशोरि!
तुम्हारी मधुर मूर्ति छविमान,
लाज में लिपटी उषा समान
प्रिये प्राणों की प्राण!

मुकुल मधुपों का मृदु मधुमास,
स्वर्ण सुख श्री सौरभ का सार
मनोभावों का मधुर विलास,
विश्व सुषमा ही का संसार,
दृगों में छा जाता सोल्लास
व्योम-बाला का शरदाकाश

तुम्हारा आता जब प्रिय ध्यान
प्रिये, प्राणों की प्राण !

अरुण अधरों की पल्लव-प्रात
मोतियों-सा हिलता हिम-हास
इन्द्रधनुषी पट से ढँक गात
बाल विद्युत् का पावस-लास,
हृदय में खिल उठता तत्काल
अधखिले-अंगों का मधुमास
तुम्हारी छवि का कर अनुमान
प्रिये प्राणों की प्राण !

खेल सस्मित सखियों के साथ
सरल शैशव सी तुम साकार,
लोल कोमल लहरों में लीन
लहर ही-सी कोमल लघु भार
सहज करती होगी सुकुमारि !
मनोभावों से बाल विहार
हंसिनी सी सर में कल तान
प्रिये प्राणों की प्राण !

लोल सौरभ का मृदु कच-जाल
सूँघता होगा अनिल समोद,

सीखते होंगे उड़ खग-बाल
तुम्हीं से कलरव, केलि, विनोद,
चूम लघु पद चंचलता, प्राण !
फूटते होंगे नव जलस्रोत,
मुकुल बनती होगी मुसकान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

ऊर्मिल सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरुण सरोज समान
मुग्ध कवि के उर के छू तार
प्रणय का - सा नव गान,
तुम्हारे शैशव में सोभार,
पा रहा होगा यौवन प्राण,
स्वप्न-सा विस्मय-सा अम्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकंपित मृदु-उर पुलकित गात
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित पद नमित-पलक-दृग्-पात,
पास जब आ न सकोगी प्राण !
मधुरता में सी मरी अजान
लाज की छुईमुई सी म्लान
प्रिये प्राणों की प्राण !

सुमुखि, वह मधुक्षण! वह मधुवार!
धरोगी कर में कर सुकुमार!
निखिल जब नर नारी संसार
मिलेगा नव सुख से नव बार
अधर-उर से उर अधर समान
पुलक से पुलक प्राण से प्राण
कहेंगे नीरव प्रणयाख्यान
प्रिये, प्राणों की प्राण!

अरे चिर गूढ़ प्रणय आख्यान!
जब कि रुक जाएगा अनजान
साँस-सा नभ उर में पवमान,
समय निश्चल, दिशि पलक समान,
अवनि पर झुक आएगा प्राण!
व्योम चिर, विस्मृति से म्रियमाण
नील सरसिज-सा हो-हो म्लान
प्रिये, प्राणों की प्राण!

हुई बाँसुरी सुनहरी टेर

प्रतीक्षा

कब से विलोकती तुमको
ऊषा आ वातायन से ?
संध्या उदास फिर जाती
सूने गृह के आँगन से !

लहरें अधीर सरसी में
तुमको तकतीं उठ-उठ कर,
सौरभ-समीर रह जाता
प्रेयसि, ठंडी साँसें भर !

हैं मुकुल मुँदे डालों पर,
कोकिल नीरव मधुबन में
कितने प्राणों के गाने
ठहरे हैं तुमको मन में !

तुम आओगी आशा में
अपलक हैं निशि के उडुगण !
आओगी अभिलाषा से
चंचल चिर नव जीवन-क्षण !

स्मिति

मुसकुरा दी थीं क्या तुम प्राण!
मुसकुरा दी थी आज विहान?

आज गृह-वन-उपवन के पास
लोटता राशि राशि हिम-हास,
खिल उठी आँगन में अवदात
कुंद-कलियों की कोमल प्रात!

मुसकुरा दी थीं बोलो प्राण!
मुसकुरा दी थीं तुम अनजान?

आज छाया चहुँदिशि चुपचाप
मृदुल मुकुलों का मौनालाप,
रुपहली कलियों से कुछ लाल,
लद गई पुलकित पीपल डाल,

और वह पिक की मर्म पुकार
प्रिये! झर झर पड़ती साभार,
लाज से गड़ी न जाओ प्राण!
मुसकुरा दी क्या आज विहान?

'हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

नील कमल

नील कमल-सी हैं वे आँख!

डूबे जिनके मधु में पाँख—
मधु में मन-मधुकर के पाँख,

नील जलज-सी हैं वे आँख!

मुग्ध स्वर्ण किरणों ने प्रात
प्रथम खिलाए वे जलजात
नील व्योम ने ढल अज्ञात
उन्हें नीलिमा दी नवजात,
जीवन की सरसी उस प्रात
लहरा उठी चूम मधु-वात,
व्याकुल लहरों ने तत्काल
उनमें चंचलता दी डाल,

नील नलिन-सी हैं वे आँख!

जिनमें बस उर का मधुमास
कृष्ण कली बन गया विलास,

नील सरोरुह-सी वे आँख!

मन विहग

तुम्हारी आँखों का आकाश !
सरल आँखों का नीलाकाश—

खो गया मेरा खग अनजान,
मृगेक्षिणि ! इनमें खग अज्ञान !

देख इनका चिर करुण प्रकाश
अरुण कोरों में उषा विलास
खोजने निकला निभृत निवास,
पलक पल्लव प्रच्छाय निवास,

न जाने ले क्या-क्या अभिलाष
खो गया बाल विहग नादान !

तुम्हारे नयनों का आकाश
सजल, श्यामल अकूल आकाश !

गूढ़ नीरव, गंभीर प्रसार,
न गहने को तृण का आधार,

बसाएगा कैसे संसार,
आज! इनमें अपना संसार।

न इनका ओर-छोर रे पार,
खो गया वह नव पथिक अजान।

प्रेम नीड़

नवल मेरे जीवन की डाल
बन गई प्रेम-विहग का वास !

आज मधुवन की उन्मद वात
हिला रे गई पात सा गात,
मंद्र द्रुम मर्मर सा अज्ञात
उमड़ उठता उर में उच्छ्वास !

नवल मेरे जीवन की डाल
बन गई प्रेम विहग का वास !

मदिर कोरों से कोरक जाल
वेधते मर्म बार रे बार,
मूक चिर प्राणों का पिक बाल
आज कर उठता करुण पुकार,

अरे वन जल-थल नवल प्रवाल
जगाते रोम रोम में ज्वाल,
आज बौरे रे तरुण रसाल
भौंर-मन मँडरा गई सुवास !

गृह काज

आज रहने दो यह गृह काज
प्राण! रहने दो यह गृह काज!

आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास,
प्रिये लालस-सालस वातास
जगा रोओं में सौ अभिलाष!

आज उर के स्तर-स्तर में प्राण!
सजग सौ-सौ स्मृतियाँ सुकुमार,
दृगों में मधुर स्वप्न संसार,
मर्म में मदिर स्पृहा का भार!

शिथिल, स्वप्निल पंखड़ियाँ खोल
आज अपलक कलिकाएँ बाल,
गूँजता भूला भौंरा डोल,
सुमुखि उर के सुख से वाचाल!

हुई बासुरी सुनहरी टेर

आज चंचल चंचल मन-प्राण
आज रे शिथिल शिथिल तन भार,
आज दो प्राणों का दिन-मान
आज संसार नहीं संसार!

आज क्या प्रिये सुहाती लाज!
आज रहने दो सब गृह काज!

मधुवन

आज नव मधु की प्रात
झलकती नभ-पलकों में, प्राण !
मुग्ध यौवन के स्वप्न समान —
झलकती, मेरी जीवन-स्वप्न ! प्रभात
तुम्हारी, मुख-छवि सी रुचिमान !

आज लोहित मधु प्रात
व्योम-लतिका में छायाकार
खिल रही नव पल्लव सी लाल
तुम्हारे मधुर कपोलों पर सुकुमार
लाज का क्यों मृदु किसलय जाल !

आज उन्मद मधु प्रात
गगन के इंदीवर से नील
झर रही स्वर्ण-मरंद समान
तुम्हारे शयन शिथिल सरसिज उन्मील
छलकता क्यों मदिरालस, प्राण !

आज स्वर्णिम मधु प्रात
व्योम के विजन कुंज में प्राण
खुल रही नवल गुलाब समान,
लाज के विनत वृन्त पर क्यों अभिराम
तुम्हारा मुख-अरविन्द सकाम !

प्रिये मुकुलित मधु प्रात
मुक्त नभ वेणी में सोभार
सुहाती रक्त पलाश समान,
आज मधुवन मुकुलों में झुक साभार
तुम्हें करता निज विभव प्रदान !

(२)

डोलने लगी मधुर मधुवात
हिला तृण व्रतति कुंज, तरु-पात,
डोलने लगी प्रिये ! मृदु वात
गुंज-मधु-गन्ध-धूलि-हिम - गात !

डोलने लगीं, दयित चिर काल,
नवल कलि अलस-पलक-दल जाल,
डोलने लगीं डाल से डाल,
प्रमुद, पुलकाकुल कोकिल बाल !

युवाओं का प्रिय पुण्य गुलाल,
प्रणय-स्मृति-चिह्न,प्रथम मधुबाल,

खोलता लोचन-दल मदिराभ,
प्रिये चल अलि दल से आभास!

आज मुकुलित-कुसुमित चहुँ ओर
तुम्हारी छवि की छटा अपार
फिर रहे उन्मद मधु प्रिय भौंर
नयन पलकों के पंख पसार!

तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार
लग गई मधु के वन में ज्वाल,
खड़े किंशुक अनार, कचनार
लालसा की लौ-से उठ लाल!

कपोलों की मदिरा पी प्राण!
आज पाटल गुलाब के जाल,
विनत शुक-नासा का धर ध्यान
बन गये पुष्प पलाश अराल!

खिल उठी चल दशनावलि आज
कुंद कलियों में कोमल आभ,
एक चंचल चितवन के व्याज
तिलक को चारु छल-सुख लाभ!

तुम्हारे चल पद चूम निहाल
मंजरित अरुण अशोक सकाल,

स्पर्श से रोम रोम तत्काल
सतत सिंचित प्रियंगु की डाल !

स्वर्ण-कलियों की छवि सुकुमार
चुरा चम्पक तुमसे मृदु वास
तुम्हारी शुचि स्मिति से साभार,
भ्रमर को भाने वे क्यों पास ?

देख चपल मृदु-पटु पद चार
लुटाता स्वर्ण राशि कनिमार,
कुसुम फूलों में लिए उधार
नर्म-मर्मज्ञ मुग्ध मदार !

तुम्हारी पी मुख-वास तरंग
आज बौरे भौंरे सहकार,
चुनाती नित सबग निज अंग
सखि ! तुम ही वनने सुकुमार !

लालिमा भर फूलों में प्राण !
सीखती लाजवती मृदु लाज
माधवी करती झुक सम्मान
देख तुममें मधु के सब साज !

गबेली वेला उर की हार
मोतिया मोती की मुसकान

मोगरा कर्णफूल-सा स्फार,
घुँगुचियाँ मदनबान की वान !

तुम्हारी तनु-वनिमा मधु भार
बनी मृदु व्रतति-प्रतति का जाल,
मृदुलता सिरिस-मुकुल सुकुमार,
विपुल पुलकावलि चीना-डाल !

प्रिये, कलि-कुसुम-कुसुम में आज
मधुरिमा मधु, सुखमा सुविकास,
तुम्हारी रोम रोम छबि-व्याज
छा गया मधुवन में मधुमास !

(३)

विचरती मृदु-मन मलय समीर
साँस सुधि, स्वप्न सुरभि, सुख गान,
मार केशर-शर मलय-समीर
हृदय हुलसित कर पुलकित प्राण !

बेलि-सी फैल फल नवगात
चपल, मधु-मद महसह सुकुमार
लिपट लगती मलयानिल गात
झूम झुक-झुक सौरभ के भार !

आज, तृण छद, खग मृग पिक, कीर,
कुसुम कलि, व्रतति, विटप, सोच्छ्वास
सलिल आकुल उत्कलित, अधीर,
अवनि, जल, अनिल, अनल, आकाश!

आज वन में पिक, पिक में गान,
विटप में कलि, कलि में सुविकास
कुसुम में रज रज में मधु, प्राण!
सलिल में लहर, लहर में लास!

देह में पुलक उरों में भार
भ्रुवों में भंग, दृगों में बाण,
अधर में अमृत हृदय में प्यार,
गिरा में लाज प्रणय में मान!

तरुण विटपों से लिपट सुजात
सिहरतीं लतिका मुकुलित गात
सिहरतीं रह-रह सुख से प्राण,
लोम-लतिका बन कोमल पात!

गंध-गुंजित कुंजों में आज
बँधे बाँहों में छायालोक
मर्मरित छत्र पत्र-दल व्याज
लिए द्रुम, तुमको खड़ी विलोक!

मिल रहे नवल बेलि-तरु, प्राण!
शुकी-शुक हंस-हंसिनी संग,
लहर सर सुरभि समीर विहान
मृगी-मृग, कलि अलि, किरण-पतंग!

मिलें अधरों से अधर समान,
नयन से नयन, गात से गात,
पुलक से पुलक प्राण से प्राण,
भुजों से भुज, कटि से कटि घात!

आज तन-तन मन-मन हों लीन,
प्राण! सुख-सुख स्मृति-स्मृति चिरसात,
एक क्षण, अखिल दिशावधि-हीन,
एक रस, नाम रूप अज्ञात!

आज, तृण छद, खग मृग, पिक, कीर,
कुसुम, कलि, व्रतति, विटप सोच्छ्वास
सलिल आकुल उत्कलित, अधीर
अवनि, जल अनिल, अनल, आकाश!

आज वन में पिक, पिक में गान,
विटप में कलि, कलि में सुविकास
कुसुम में रज रज में मधु, प्राण!
सलिल में लहर, लहर में लास!

देह में पुलक उरों में भार,
भ्रुवों में भंग दृगों में बाण
अधर में अमृत हृदय में प्यार,
गिरा में लाज प्रणय में मान!

तरुण विटपों से लिपट सुजात
सिहरतीं लतिका मुकुलित गात,
सिहरतीं रह-रह सुख से, प्राण
लोम-लतिका बन कोमल गात!

गन्ध-गुंजित कुञ्जों में आज
बँधे बाँहों में छायाऽलोक,
मर्मरित छन्द पत्र-दल ब्याज
लिए द्रुम, तुमको खड़ी विलोक!

मिल रहे नवल वेलि-तरु, प्राण !
शुकी-शुक, हंस-हंसिनी संग,
लहर सर सुरभि समीर विहान
मृगी-मृग, कलि-अलि, किरण-पतंग !

मिलें अधरों से अधर समान,
नयन से नयन गात से गात,
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण,
भुजों से भुज, कटि से कटि घात !

आज तन-तन मन-मन हों लीन,
प्राण ! सुख-दुख स्मृति-स्मृति चिरसात,
एक क्षण, अखिल दिशावधि-हीन,
एक रस, नाम रूप अज्ञात !

रूप तारा

रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम
मृगेक्षिणि ! सार्थक-नाम !

एक लावण्य लोक छविमान
नव्य नक्षत्र समान
उदित हो दृग-पथ में अम्लान
तारिकाओं की तान !
प्रणय का रच तुमने परिवेश
दीप्त कर दिया मनोनभ-देश
स्निग्ध सौन्दर्य-शिखा अनिमेष !
अमंद अनिन्द्य अशेष !

उषा-सी स्वर्णोदय पर भोर
दिखा मुख कनक-किशोर
प्रेम की प्रथम मदिरतम-कोर
दृगों में दुरा कठोर,
छा दिया यौवन-शिखर अछोर
रूप किरणों में बोर,

सजा तुमने सुख-स्वर्ण-सुहाग,
लाज-लोहित-अनुराग!

नयन-तारा बन मनोभिराम
सुमुखि, अब सार्थक करो स्वनाम!

तारिका-सी तुम दिव्याकार
चन्द्रिका की झंकार!
प्रेम-पंखों में उड़ अनिवार
अप्सरी सी लघु-भार,
स्वर्ग से उतरी क्या सोद्गार
प्रणय-हंसिनी सुकुमार?
हृदय-सर में करने अभिसार
रजत रति स्वर्ण-विहार!

आत्म निर्मलता में तल्लीन
चारु चित्रा सी, आभासीन!
अधिक छिपने में खुल अनजान
तन्वि! तुमने लोचन मन छीन,
कर दिए पलक प्राण गति-हीन,
लाज के जल की मीन!
रूप की-सी तुम ज्वलित विमान,
स्नेह की सृष्टि नवीन!

हृदय-नभ-तारा बन छविधाम
प्रिये! अब सार्थक करो स्वनाम।

प्रथम यौवन मेरा मधुमास
मुग्ध उर मधुकर, तुम मधु, प्राण!
शयन लोचन सुधि स्वप्न विलास,
मधुर-संज्ञा प्रिय-ध्यान!
शून्य जीवन निस्संग आकाश
इंदु-मुख इंदु समान,
हृदय सरसी, छवि पद्म विकास
स्पृहाएँ ऊर्मिल-गान!

कल्पना तुममें एकाकार,
कल्पना में तुम आठों याम
तुम्हारी छवि में प्रेम अपार,
प्रेम में छवि अभिराम?
अखिल इच्छाओं का संसार
स्वर्ण छवि में निज गढ़ छविमान,
बन गई, मानसि! तुम साकार
देह दो एक-प्राण!

गीत

जब मिलते मौन-नयन पल भर,
खिल-खिल अपलक कलियाँ सुंदर

देखतीं मुग्ध, विस्मित नभ पर ! जब०

तुम मदिर अधर पर मधुर अधर
धरते, झरते हिम-कण झर् झर्
मोती के चुंबन से चूकर

मृदु मुकुलों के सस्मित मुख पर ! जब०

तुम आलिंगन करते, हिमकर !
नाचतीं हिलोरें सिहर-सिहर।
सौ-सौ बाँहों में बाँहें भर

सर में, आकुल उठ-उठ गिरकर ! जब०

जब रहस मिलन होता सुखकर,
स्वर्गिक सुख स्वप्नों से सुंदर
भर जाता स्नेहातुर होकर,

युग-युग का विरह विधुर अंतर। जब०

लहरों का गीत

अपने ही सुख से चिर चंचल
हम खिल खिल पड़ती हैं प्रतिपल!
जीवन के फेनिल मोती को
ले-ले चल-करतल में टलमल!

जाने किस मधु का मलय परस
करता प्राणों को पुलकाकुल
जीवन की लहलह लतिका में
विकसा इच्छा के नव-नव दल!

सुन-सुन मधु मुरली की मृदु ध्वनि
गृह-पुलिन छोड़, सुख से विह्वल
हम हुलस नृत्य करतीं हिल हिल,
खस-खस पड़ता उर से अंचल!

चिर जन्म-मरण को हँस-हँस कर
हम आलिंगन करतीं पल-पल,
फिर फिर असीम से उठ-उठकर
फिर फिर उसमें हो-हो ओझल!

हवा के झकोरों का गीत

हम चिर अदृश्य नभचर सुंदर
अपनी ही महिमा पर निर्भर।
शोभित मृदु नीलांशुक तन पर,
स्मित तुहिन-बाष्प से पुलकित पर।

अपने ही सुख से सिहर सिहर
नभ-वीणा के से स्वर्गिक स्वर
आ सेते हम जग का अम्बर
लहरा लहरों से लहरों पर।

अधरों में भर अस्फुट मर्मर
साँसों से पी सौरभ सुखकर
फिरते रहते हम निशि वासर
बढ़ चिरअग्रीव चल अलसों पर।

हम साँस-साँस में लास अमर
करते दुर उर-उर के भीतर,

बनकर फिर झंझा से दुर्धर
द्रुत जीर्ण जगत दल लेत हर!
खिल उठते चपल परस पाकर
पुलकों से तृण तरुदल सत्वर,
नाचतीं लग खिलखिला लहर
बाँहों में कोमल बाँहें भर!

आम्र वन

मंजरित आम्र वन छाया में
हम प्रिये मिले थे प्रथम बार,
ऊपर हरीतिमा-नभ गुंजित
नीचे चंद्रातप छना स्फार!

तुम मुग्धा थी अति भावप्रवण,
उकसे थे अँबियों-से उरोज
चंचल प्रगल्भ, हँसमुख, उदार
मैं सलज,—तुम्हें था रहा खोज!
छनती थी ज्योत्स्ना शशिमुख पर,
मैं करता था मुख सुधा पान—
कूकी थी कोकिल हिले मुकुल,
भर गए गंध से मुग्ध प्राण!

तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैंने कोमल वपु भरा गोद,

था आत्म समर्पण सरल, मधुर
मिल गए सहज आल्हादामोद!
मंजरित आम्र वन के नीचे
हम प्रिये मिले थे प्रथम बार,
मधु के कर में था प्रणय-बाण,
पिक के उर में पावक पुकार!

विजन घाटी

यह विजन चाँदनी की घाटी
छाई मृदु वन तरु गंध जहाँ,
नीबू आड़ू के मुकुलों के
मद से मलयानिल लदा वहाँ!

सौरभ श्लथ हो जाते तन मन
बिछते झरझर मृदु सुमन शयन
जिन पर छन कंपित पत्रों से
लिखती कुछ ज्योत्स्ना जहाँ-तहाँ!

आ कोकिल का कोमल कूजन,
उकसाता आकुल उर कंपन,
यौवन का री, यह मधुर स्वर्ग,
जीवन बाधाएँ यहाँ कहाँ!

ग्राम युवती

उन्मद यौवन से उभर
घटा सी नव असाढ़ की सुन्दर,
अति श्याम वरण
श्लथ, मंद चरण,
इठलाती आती ग्राम युवति
वह गजगति
सर्प डगर पर !

सरकाती पट
खिसकाती-लट,—
शरमाती झट
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट !
हँसती खलखल,
अबला चंचल
ज्यों फूट पड़ा हो स्रोत सरल
भर फेनोज्वल दशनों से अधरों के तट !

वह मग में रुक,
मानो कुछ झुक,
आँचल सँभालती फेर नयन मुख,
पा प्रिय पद की आहट,
आ ग्राम युवक,
प्रेमी याचक,
जब उसे ताकता है इकटक
उल्लसित,
चकित,
वह लेती मूँद पलक पट!

पनघट पर
मोहित नारी नर!—
जब जल से भर
भारी गागर
खींचती उबहनी वह बरबस
चोली से उभर-उभर कसमस
खिंचते सँग युग रस भरे कलश—
जल छलकाती
रस बरसाती,
बलखाती वह घर को जाती
सिर पर घट
उर पर धर पट!

कानों में कुंडल
खोंस, — धवल
या कुँई कनेर, लोध पाटल,
वह हरसिंगार से कच सँवार
मृदु मौलसिरी के गूँथ हार,
गउओं सँग करती वन विहार,
पिक चातक के सँग दे पुकार—
वह कुंद कास से,
अमलतास से
आम्र मौर, सहजन पलाश से
निर्जन में सज ऋतु सिंगार !
तन पर यौवन सुषमाशाली
मुख पर श्रमकण रवि की लाली
सिर पर धर स्वर्ण शस्य डाली
वह मेड़ों पर आती जाती
उरु मटकाती,
कटि लचकाती
चिर वर्षातप हिम की पाली
धनि श्याम वरण
अति क्षिप्र चरण
अधरों से धरे पकी बाली !

रे दो दिन का
उसका यौवन !

हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

वह मग में रुक,
मानो कुछ झुक
आँचल सँभालती फेर नयन मुख
पा प्रिय पद की आहट,
आ ग्राम युवक
प्रेमी याचक,
जब उसे ताकता है इकटक,
उल्लसित,
चकित,
वह लेती मूँद पलक पट।

पनघट पर
मोहित नारी नर।—
जब जल से भर
भारी गागर
खींचती उबहनी वह, बरबस
चोली से उभर-उभर कसमस
खिंचते सँग युग रस भरे कलश—
जल छलकाती
रस बरसाती,
बलखाती वह घर को जाती,
सिर पर घट
उर पर धर पट।

कानों में गुड़हल
खोंस, — धवल
या कुँई, कनेर, लोध पाटल,
वह हरसिंगार से कच सँवार
मृदु मौलसिरी के गूँथ हार,
गउओं सँग करती वन विहार
पिक चातक के सँग दे पुकार—
वह कुंद काँस से,
अमलतास से
आम्र मौर, सहजन, पलाश से,
निर्जन में सज ऋतु सिंगार।
तन पर यौवन सुषमाशाली
मुख पर श्रमकण, रवि की लाली,
सिर पर धर स्वर्ण शस्य डाली,
वह मेड़ों पर आती जाती
उरु मटकाती,
कटि लचकाती
चिर वर्षातप हिम की पाली
धनि श्याम वरण
अति क्षिप्र चरण
अधरों से धरे पकी बाली!

रे दो दिन का
उसका यौवन!

सपना छिन का
मधुमासस्मरण!
दुखों से पिस
दुर्दिन में घिस,
जर्जर हो जाता उसका तन!
बह जाता असमय यौवन धन!
बह जाता तट का तिनका
जो लहरों से हँस खेला कुछ क्षण!!

रेखाचित्र

चाँदी की चौड़ी रेती
फिर स्वर्णिम गंगा धारा
जिसके निश्चल उर पर विजड़ित
रत्न छाय नभ सारा !

फिर बालू का नासा,
लंबा ग्राह मुख सा फैला,
छितरी जल रेखा—
कछार फिर गया दूर तक मैला !

जिस पर मछुओं की मड़ई
औ तरबूजों के ऊपर,
बीच-बीच में सरपत के मूठे
डग से खोले पर !

पीछे, चित्रित विटप पाँति
लहराई सांध्य क्षितिज पर,

जिससे सट कर, नील धूम्र
    रेखा क्यों खिंची समांतर !

बर्हपिच्छ-से वसद पंख
    अंबर में बिखरे सुन्दर
रग रग की हलकी गहरी
    छायाएँ छिटका कर !

सबसे ऊपर निर्जन नभ में,
    अपलक संध्या तारा
नीरव औ' निःसंग
    खोजता सा कुछ चिर पथहारा !

साँझ,—नदी का सूना तट,
    मिलता है नहीं किनारा,
खोज रहा एकाकी जीवन,
    साथी स्नेह सहारा !

स्त्री

यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर, तो वह नारी-उर के भीतर
दल पर दल खोल हृदय के स्तर
जब बिठलाती प्रसन्न होकर
वह अमर प्रणय के शतदल पर!

मादकता जग में कहीं अगर वह नारी अधरों में सुखकर,
क्षण में प्राणों की पीड़ा हर
नव जीवन का दे सकती वर
वह अधरों पर धर मदिराधर!

यदि कहीं नरक है इस भू पर तो वह भी नारी के अन्दर,
वासनावर्त में डाल प्रखर
वह अंध गर्त में चिर दुस्तर
नर को ढकेल सकती सत्वर!

याद

विदा हो गई साँझ विनत मुख पर झीना आँचल धर
मेरे एकाकी आँगन में मौन मधुर स्मृतियाँ भर!
वह केसरी दुकूल अभी भी फहरा रहा क्षितिज पर,
नव असाढ़ के मेघों से घिर रहा बराबर अंबर!

मैं बरामदे में लेटा शय्या पर पीड़ित अवयव,
मन का साथी बना बादलों का विषाद है नीरव!
सक्रिय यह सकरुण विषाद —मेघों से उमड़-उमड़कर
भावी के बहु स्वप्न, भाव बहु व्यथित कर रहे अंतर!

मुखर विरह दादुर पुकारता उत्कंठित भेकी को,
बर्हभार से मोर लुभाता मेघ मुग्ध केकी को
आलोकित हो उठता सुख से मेघों का नभ चंचल
अंतरतम में एक मधुर स्मृति जग-जग उठती प्रतिपल!

कंपित करता वक्ष धरा का घन गंभीर गर्जन स्वर
भू पर ही आ गया उतर शत धाराओं में अंबर!

भीनी भीनी भाप सहज ही साँसों में घुलमिल कर
एक और भी मधुर गंध से हृदय दे रही है भर!

नव असाढ़ की सन्ध्या में मेघों के तम में कोमल
पीड़ित एकाकी शय्या पर शत भावों से विह्वल
एक मधुरतम स्मृति पल भर विद्युत सी चलकर उज्ज्वल
याद दिलाती मुझे हृदय में रहती जो चुप निश्चल!

अवगुंठिता

वह कैसी थी
मैं न बता पाऊँगा
वह कैसी थी!

प्रथम प्रणय की आँखों ने था उसको देखा,
यौवन उदय
प्रणय की थी वह प्रथम सुनहली रेखा!

ऊषा का अवगुंठन पहने,
क्या जाने खग पिक से कहने
मौन मुकुल सी मृदु अंगों में
मधुऋतु बंदी कर लाई थी!
स्वप्नों का सौन्दर्य कल्पना का माधुर्य
हृदय में भर आई थी!

वह कैसी थी
मैं न बता पाऊँगा
वह कैसी थी!

'क्या है प्रणय! एक दिन बोली 'उसका वास कहाँ है?
इस समाज में? देह मोह का
देह द्रोह का वास जहाँ है?

'देह नहीं है परिधि प्रणय की,
प्रणय दिव्य है मुक्ति हृदय की
यह सनातनी रीति
देह वेदी हो प्राणों के परिणय की!

'बँधकर हृदय मुक्त होते हैं
बँधकर देह यातना सहती
नारी के प्राणों में ममता
बहती रहती, बहती रहती!

नारी का तन माँ का तन है,
जाति वृद्धि के लिए विनिर्मित
पुरुष प्रणय अधिकार प्रणय है
सुख विलास के हित उत्कण्ठित!

'तुम हो स्वप्न लोक के वासी,
तुमको केवल प्रेम चाहिए,
प्रेम तुम्हें देती मैं अबला
मुझको घर की क्षेम चाहिए!

'हृदय तुम्हें देती हूँ प्रियतम,
देह नहीं दे सकती,

जिसे देह दूँगी वह निश्चित
स्नेह नहीं दे सकती!

'मत विदा दो मन के साथी
तुम नभ के, मैं भू की वासी
नारी तन है तन है तन है
हे मन प्राणों के अभिलाषी!

नारी देह शिखा है जो
नव देहों के नव दीप सँजोती,
जीवन जैसे देही होता,
जो नारीमय देह न होती?

'तुम हो स्वप्नों के द्रष्टा, तुम
प्रेम ज्ञान औ सत्य प्रकाशी,
नारी है सौन्दर्य प्राण
नारी है रूप सृजन की प्यासी!

'तुम जग की सोचो मैं घर की
तुम अपने प्रभु, मैं निज दासी
लज्जा पर न तुम्हें आती,
बन सकते नहीं प्रेम संन्यासी?'

'विदा!' 'विदा!
शायद मिल जाएँ यदा कदा!

मैं बोला 'तुम जाओ
प्रसन्न मन जाओ, मेरा भाषी'
उसके नयनों में आँसू थे
अधरों पर निश्छल हाँसी।

वह क्या समझ सकी थी उस पर
क्यों रीझा था यह आत्मातुर
स्वप्न लोक का वासी।

मैं मौन रहा
फिर स्वत कहा,

'बहती जाओ, बहती जाओ
बहती जीवन धारा में
शायद कभी लौट आओ तुम
प्राण धन सका अगर सबहारा मैं।'

स्वप्न सखी

आओ हे चिर स्वप्न सखी, आकुल अंतर में आओ
फूलों की नव कोमलता में जीवन का लिपटाओ !
इन प्रिय स्नेह सरों में अपलक शरद नीलिमा जागृत
चपल हंस पंखों से चुंबित उरसिज सी बरसाओ !
इस प्रवाल प्यासे की मधु मदिरा सखि उर मादन
तुहिन फेन स्मित स्वर्णिम प्रीति सुधा घट मुझे पिलाओ !

स्नेह लता-से पुलक पाश में कल मुकुलों के कोमल
उर में गुनगुन उर सी, तन में तन सी मृदुल समाओ !
सुरभित सांसों के पलने में मर्म स्पृहा कर दोलित
फूलों के मधु शिखरों पर प्राणों के स्वप्न झुलाओ !
इन मांसल चपल झरनों से लिपटी विद्युत् लपटें,
प्रणय उदधि में अंतर की ज्वाला को प्रथम डुबाओ !
मेटा नव लावण्य चांदनी सा बेला के वन में
खिलती कलिकाओं की शोभा कोमल सेज सजाओ !
स्वप्नों की पी सुरा आज यौवन जागे विस्मृति में,
चंचल विद्युत् को समग्र ज्योत्स्ना के अंक लगाओ !
आओ हे प्रिय स्वप्न सगिनी, आकुल उर में आओ !

नारी जग

पृथक न अधिक रहा नारी जग
धरे पुरुष के संग उसने पग
रंग तरंगित जिसकी श्री से
कुसुमित सुरभित जग का मग मग !
गुड़ियों के युग प्रिय किशोर क्षण
बीते, उर में भर मृदु कंपन,
बाँध कुसुम धनु तन, यौवन ने
किया रूप सम्मोहन वर्षण !
वक्ष श्रोणि ने बढ़ कटि ने छँट
सौष्ठव रेखाएँ कीं रूपित
मुख नयनिमा सलज लालिमा,
पद बंकिमा से तरुणी चित्रित !

शोभा कँपती लहरी सी उठ
हुई देह लघिमा में स्तंभित,
देख मुकुर-से मन में निज मुख
रही मधुरिमा छवि से विस्मित !

कोमलता यह कल्पलता सी
अंगभंगि में हुई प्रस्फुटित
सुन्दरता ही प्रीति तूलि से
बनी मोहिनी प्रतिमा जीवित !

हुए रूपसी के नव अवयव
यौवन के आतप में विकसित
मधुर स्त्रीत्व में आदि कल्पना
सृजन कला के कर से मूर्तित !
जगा सहज चेष्टाओं में अब
नव लीला लावण्य अकल्पित,
पलक भृकुटि अंगुलि आसन में
छवि की दीप शिखाएँ कंपित !

तिमिर श्याम सा केश जाल घन
पृष्ठ देश पर हुआ प्रज्वलित
आभा जीती नयनों को कर
कोमल शोभा-तम से मोहित !
स्वप्नों से गुंफित यमुना सम
गाढ़ नीलतम हुआ तरंगित,
साँस ले रहे फूलों के रंग
सौरभ की कबरी में दोलित !

कांचन सी तप ज्वलित कामना
बसी सघन नयनों में दीपित

बनी कठोर कुसुम कोमलता
श्रोणि भार में हो चिर पुंजित !
बाहु लताएँ फूल पाश बन
पुलकों में हो उठीं पल्लवित
कोमल करतल चपल पदतल
जीवन के यावक से रंजित !

रूप शिखा की थी सुषमा से
हुए गेह आँगन आलोकित
वातायन में उदित कला शशि
गृह-मुख के गवाक्ष चिर शोभित !
कलि कुसुमों ने भूतल को रंग
किया शोभना के हित सज्जित,
उर की साँसों में बहने को
बना समीर गंधवह सुरभित !
ज्योत्स्ना सकुची उषा लजाई,
रहीं तारिकाएँ क्यों विस्मित,
स्रोत बहे सरसी लहराई,
निखिल प्रकृति थी हुई प्रभावित !

हृदयासन पर बिठा प्रेम ने
किया अमर स्वप्नों से पूजन
सभा स्वग मे स्वर्ण पटों में
स्वीकृत किया मर्त्य मुग्ध बंधन !

दो टुकड़ों में सिमिट नीलिमा
रही मौन नयनों में अपलक,
सजा अधर नव प्रणय वचन से
गए लालिमा से दुहरे रँग!
खिलती कलियों ने मार्दव भर,
कोकिल ने दे गीत स्वनित स्वर,
मोहक उसे किया ज्योत्स्ना ने
गोपन लज्जा में वेष्टित कर।

मधु ने फूल श्वास से भावुक
किया शरद ने लज्जा-मुख स्मित,
मणि मुक्तामय खनि सागर ने
भू ने स्वर्ण रजत से झंकृत।
जगा हृदय में प्रीति दर्प नव
शत-शत नयनों से हो लक्षित
हास भाव में मधुर सयमन
शोभा तन लज्जा से संवृत।

तड़ित् गर्भ सुरधनु कबरी बन
ज्यों कृतार्थ होता भू पर झर,
मधुर अप्सरा बनी धनी अब
कुल प्रदीप से ज्योतित कर घर।
मातृ स्नेह बरसा नव शिशु पर
मुग्ध प्रणयिनी हुई निछावर,
सहधर्मिणी बनी वह प्रिय की
सुख दुख की मंत्री, चिर सहचर।

मर्म कथा

बाँध दिए क्यों प्राण
प्राणों से !
तुमने चिर अनजान
प्राणों से !

गोपन रह न सकेगी
अब यह मर्म कथा
प्राणों की न रुकेगी
बढ़ती विरह व्यथा

विवश, फूटते गान,
प्राणों से !

यह विदेह प्राणों का बंधन,
अंतर्ज्वाला में तपता तन !
मुग्ध हृदय, सौन्दर्य शिखा को
दग्ध कामना करता अर्पण !

नहीं चाहता जो कुछ भी व्यवधान
प्राणों से।
बाँध दिए क्यों प्राण
प्राणों से।

प्रणय कुंज

तुम प्रणय कुंज में जब आई
पल्लवित हो उठा मधु यौवन
मंजरित हृदय की अमराई ।

मलय हुआ मद चंचल
लहराया सरसी जल
अलि गूंज उठे, पिक ध्वनि छाई ।

अब वह स्वप्न अगोचर,
मर्म व्यथा, मथित करती अंतर,
प्राणों के दल झर-झर,
करते आकुल मर्मर ।

चिर विरह मिलन में भर लाई
तुम प्रणय कुंज में जब आई ।

शरद चाँदनी

शरद चाँदनी !
विहँस उठी अतल मौन
नीलिमा उदासिनी !

आकुल सौरभ समीर
छल-छल चल सरित नीर
हृदय प्रणय से अधीर
जीवन उन्मादिनी !

अश्रु सजल तारक दल
अपलक दृग गिनते पल
छेड़ रही प्राण विकल
विरह वेणु वादिनी !

जगीं कुसुम कलि थर्-थर्
जगे रोम सिहर-सिहर,
शशि असि सी प्रेयसि स्मृति
जगी हृदय ह्लादिनी !
शरद चाँदनी !

हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

मर्म व्यथा

प्राणों में चिर व्यथा बाँध दी!
क्यों चिर दग्ध हृदय को तुमने
वृथा प्रणय की अमर साध दी!

पर्वत को जल दारु को अनल
वारिद को दी विद्युत् चपल,
फूल को सुरभि, सुरभि को विकल
उड़ने की इच्छा अबाध दी!

हृदय दहन रे हृदय दहन
प्राणों की व्याकुल व्यथा गहन।
यह सुलगेगी होगी न सहन
चिर स्मृति की श्वास समीर साथ दी!

प्राण जलेंगे, देह जलेगी,
मर्म व्यथा की कथा ढलेगी
सोने सी तप, निखरेगी
प्रेयसि प्रतिमा, ममता अगाध दी!
प्राणों में चिर व्यथा बाँध दी!

तुम्हें देखने शोभा ही क्यों लहरी सी उठ आई,
अंग भंगिमा तनिमा बन मृदु देही बीच समाई,
कोमलता कोमल अंगों में पहिले तन भर पाई।

फूल खिल उठे तुम जैसी ही भू को दी दिखलाई,
सुन्दरता वसुधा पर खिल सौ सौ रंगों में छाई,
छाया सी ज्योत्स्ना सकुची प्रतिछबि सी उषा लजाई।

तुम में जो लावण्य मधुरिमा, जो असीम सम्मोहन
तुम पर प्राण निछावर करने पागल हो उठता मन!
नहीं जानती क्या निज बल तुम निज अपार आकर्षण?

बाँध लिया तुमने प्राणों को प्रणय स्वप्न बंधन में
तुम जानो क्या तुमको माया मर्म छिपा क्या मन में
इन्द्र धनुष बन कर हँसती तुम अश्रु वाष्प के घन में।

स्वप्न देही

स्वप्न देही हो, प्रिये तुम
देह तनिमा मधु भोई!
रूप की लौ सी सुनहली
दीप में तन के सँजोई!

सेज पर लेटी सुघर
सौन्दर्य छाया सी सुहाई,
काम देही स्वप्न सी
स्मृति वक्ष पर तुम दी दिखाई!

कल्पना की मधुरिमा सी
भाव मृदुता में डुबोई!

देह में मृदु देह सी
उर में मधुर उर सी समा कर,
लिपट प्राणों से गई तुम
चेतना सी निपट सुन्दर!

प्रेम पलकों पर प्रकम्पित
रूप की सी स्वप्न सोई!

विरल पट से झलक
ऊर्मिल झलक करते हृदय मोहित,
सरित जल में तैरती ज्यों
नील घन छाया तरंगित!

काम वन में प्रणय ने हो
कामना की केलि बोई!

लालसा - तम से तुम्हारे
कुन्तलों के जाल में भ्रम
क्यों न होता प्यार प्रभा
छवि अपार निहार निरुपम!

मर्म की आकुल तृषा तुम
प्रणय श्वासों में पिरोई!

स्नेह प्रतिमा सी मनोरम
मर्म इच्छा से विनिर्मित
हृदय शतदल में सतत तुम
झूमती अभिलाष स्पंदित!

सार तत्वों की बनी तुम
देह भूतों बीच सोई!

हृदय तारुण्य

आम्र मंजरित, मधुप गुंजरित
मंद समीरण मंद संचरित ।
प्राणों का पिक बोल उठा फिर
अंतर में भर श्वास प्रज्वलित ।

डाल डाल पर दौड़ रही वह
श्वास रंग रंगों में कुसुमित,
नस - नस में भर रुधिर प्रवाहित
उर में रस बन गीत तरंगित ।

तन का यौवन नहीं हृदय का
यौवन रे यह भाव उच्छ्वसित,
फिर जग में सौन्दर्य पल्लवित
प्राणों में मधु स्वप्न जागरित ।

आम्र मंजरित, मधुप गुंजरित
मधु समीरण मधु संचरित ।
प्राणों में पिक बोल उठा फिर
दिशि-दिशि में भर श्वास प्रज्वलित ।

मानसी

[यह दृश्य नारी का रूपक है। नेपथ्य में गीत वाद्य दृश्यों के अनुरूप वेश विन्यास पिक मिलन योग का पपीहा विरह त्याग का प्रतीक है। कुछ नारियाँ ग्रामीण रंगों के वस्त्रों में गोपिकाएँ चटकीले घूमते लहँगों और ओढ़नियों में शिशु शिशुनियाँ केसरी और वैसे बनावों में तथा आधु निकाएँ विविध प्रान्तों में सुरेख सुरुचिपूर्ण परिधानों में नाचती हैं। अंतिम दृश्यों में भविष्य के निर्माता कृषक श्रमिक तथा मध्य उच्च वर्गों के युवक सफेद और खाकी खादी में एवं संस्कृति की संदेश वाहिकाएँ नव युवतियाँ रंगीन रेशमी वस्त्रों में नृत्य नाट्य एवं अभिनय करती हैं। जहाँ अकेले पिक चातक तथा युवक युवती की आत्मा के गीत हैं, वहाँ प्रदर्शन की सुविधा नुसार अन्य युवक युवतियाँ भी सहायक हो सकती हैं।]

प्रथम दृश्य

(१)

युवक

पिक गाओ !
नव जीवन के चारण बन
नव प्रणय कथा बरसाओ !
पिक गाओ !

हरी बाँसुरी घुमड़ती टेर

प्रीति मुक्त हो, बने न बन्धन,
विरह मिलन देवें आलिंगन
हो प्रतीति-मन नर नारी जन
दिशि-दिशि ज्वाल जलाओ !

आज वसंत विचरता भू पर
नव पल्लव के पंख खोल कर,
नवल चेतना की स्वर्णिम रज
गंध समीर, उड़ाओ !

कौन तरुणि तुम हँसी रँगीली
बिखराती आँसू से गीली ?
जीवन गल, प्रिये कँकरीली
आओ, पर, तुम आओ !
पिक गाओ !

(२)

पिक

बौरी भी यौवन अमराई,
गंध मद शीतल पुरवाई,
यह मुग्धा जीवन में आई,
नव ऊषा सा सहज सजाई !
कुहू, कुहू कुहू !

फूलों का उसका कोमल तन,
सौरभ की साँसों का मधु मन,

रोमों रोमों में आसिगम,
चित्र लिखी थी रूप मुनाई !
कुहू कुहू कुहू !

कुटिल कंटीला इस जग का मग
रँगे रुधिर से जीवन के पग
पीड़ा की प्रेमी की रग-रग
व्यथा प्रेम की ही परछाई !
कुहू कुहू कुहू !

प्रेम ? प्रेम को मिला शाप रे
मनस्ताप वह, मनस्ताप रे
जग जीवन के लिए पाप रे
नभ में विरह घटा घिर आई !
कुहू कुहू कुहू !

(३)

युवक

तुम जाओ सखि जाओ !
पाप शाप से बचो प्रिये तुम
ताप न उर में पाओ !
तुम जाओ !

प्राण, प्रणय विष पान मत करो
प्राणों को दे प्राण मत हरो

हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

प्रिय का उर में ध्यान मत धरो,
पथ में मत बिलमाओ !

अब तक जीवन में वसंत है,
यौवन में मुकुलित दिगंत है,
आशा सुख सपने अनंत हैं,
प्रिय का मोह भुलाओ !
तुम आओ !

युवती

जैसे तुम हो, वैसे ही जन,
वही हृदय, छवि सोनी सोवन,
वही प्रणय का ताप है गहन,
तुम मत हृदय दुखाओ !
प्रिय, आओ !

किसको रे वह ऐसी क्षमता
रोक सके प्राणों की ममता,
यह स्वभाव मन का, यह रमता,
मुझको राह सुझाओ !
प्रिय, आओ !

युवक

फूलों की मृदु देह तुम्हारी,
काँटों की कटु गैल हमारी,

रोमों रोमों में आलिंगन
जिस किसी की रूप लुनाई !
कुहू कुहू कुहू !

कुटिल कँटीला इस जग का मग
रँगे रुधिर से जीवन के पग,
पीड़ा की प्रेमी की रग रग
व्यथा प्रेम की ही परछाईं !
कुहू कुहू कुहू !

प्रेम ? प्रेम को मिला शाप रे,
मनस्ताप वह मनस्ताप रे
जग जीवन के लिए पाप रे
नभ में विरह घटा घिर आई !
कुहू कुहू कुहू !

(३)

युवक

तुम आओ सखि आओ !
पाप शाप से बचो प्रिये तुम
ताप न उर में पाओ !
तुम आओ !

प्राण प्रणय विष पान मत करा
प्राणों को दे प्राण मत हरो

रुकी बाँसुरी घुमड़ती टेर

प्रिय का उर में घ्यान मत भरो
पथ में मत बिलमाओ !

जब तक जीवन में वसंत है,
यौवन में मुकुलित दिगंत है
आशा सुख सपने अनंत हैं,
प्रिय का मोह भुलाओ !
तुम आओ !

युवती

जैसे तुम हो वैसे ही मन,
वही हृदय, छवि लोभी लोचन,
वही प्रणय का ताप है गहन,
तुम मत हृदय दुखाओ !
प्रिय, आओ !

किसको रे वह ऐसी क्षमता
रोक सके प्राणों की ममता,
यह स्वभाव मन का, वह रमता,
मुझको राह सुझाओ !
प्रिय आओ !

युवक

फूलों की मृदु देह तुम्हारी
काँटों की कटु गैल हमारी,

प्रणय ताप अति दुसह प्यारी,
तृषा न हृदय बुझाओ!
तुम आओ!

प्रणय अचिर, दो दिन का सपना
तन का तपना, मन का तपना
सुन न सकूँगा प्रिये कलपना
अपना सुख न गँवाओ!
तुम आओ!

(४)

पपीहा

पी कहाँ पी कहाँ ?
प्रेम बिना सूना जग जीवन
प्रिय के मधुर प्रतीक्षा के क्षण,
बरसाओ प्रिय स्वाति सुधा कण
बाट जोहता विश्व यहाँ!

प्रेम बिना जग है जीवन-मृत
प्रेम बिना अपने में सीमित,
मिलता जहाँ प्रणय चरणामृत
मृत्यु न आती पास वहाँ!

प्रेम नहीं प्राणों का बन्धन,
प्रेम न अस्थिर विरह मिलन क्षण
प्रेम मुक्ति है प्रेम ही सृजन
सुख दुख में आनन्द वहाँ !

प्रेम वृष्टि में कर अवगाहन
बनो मीत प्रणयी चिर पावन,
जहाँ हृदय में गगन, स्वाति घन,
बरसेंगे हो विवश वहाँ !

प्रेमी के आँसू के हों घन
प्रेमसी की स्मृति के विद्युत् क्षण
चिर अतृप्ति की उर में गर्जन,
विरह मिलन बन जाय महा !

(५)

युवक

तुम आती हो तो आओ, प्रेयसि, आओ,
जीवन-पथ में सौन्दर्य किरण बरसाओ !

यह सच है, सूना प्रेम बिना जग जीवन,
नर नारी उर का प्रणय भाव कटु बन्धन
तुम छाया नारी से मानवी कहाओ !

तुम विरह मिलन से मुक्त प्रणय बन आना,
तन मोह रहित, नव जीवन को अपनाना,
निज हृदय माधुरी में जग को नहलाओ !

तुम सुमन सुरभित बन मेरे उर में गाना
तुम चिर प्रतीति बन जन मन में घुस जाना
प्राणों में स्वर्गिक सौरभ मधुर बसाओ !

बन एक प्राण दो देह अभिन्न हृदय हों
प्रत्यय हो मन में संशय नहीं उदय हो
उर की उर, जीवन की जीवन बन आओ
तुम आती हो तो आओ प्रेयसि आओ !

युवती

मैं आती हूँ जीवन आती हूँ प्रियतम
हृदयों का प्रम प्रकाश नहीं तन का तम
तुम खोल हृदय पट प्रिय फिर मुझे बुलाओ
युवक—तुम आओ मानसि आओ प्रेयसि आओ !

प्रिय मैं ही सीता मैं सावित्री राधा
हरती आई जग जीवन पथ की बाधा
पा मातृ शक्ति जन अगम, प्राण ममाओ !
युवक—आओ हे आभा देही देवी आओ !

मैं गार्गी, घोषा सूर्या अदिति प्रवीणा
भारती मालती मस्सी खना नवीना
जन जन के उर में तुम आह्वान उठाओ !
युवक—आओ हे, युग की दिव्य विभा बन आओ !

मैं दुर्गा लक्ष्मी काली पावन चरणा
मैं भक्ति शक्ति सौन्दर्य माधुरी करुणा

हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

तम का विनाश, युग का निर्माण कराओ !
युवक—आओ हे जग जीवन धात्री तुम आओ !

कब से मुख पर घर लज्जा का अवगुंठन,
मैं बनी मनुज की मोह वासना की तन
मैं तुम्हें शक्ति देती व्यवधान हटाओ,
युवक—आओ, उषा सम, अनवगुंठिते, आओ !

तीसरा दृश्य

(६)

युवती

मैं आई, फिर प्रियतम, आई !
युग-युग के स्पर्शों की मेरी
देखो तुम छिपती परछाईं !
तुम क्या नर थे, मैं क्या नारी,
वधू अधीना, पति अधिकारी
तुमने मेरी फूल देह पर,
तप्त लालसा सेज सजाई !

मैं मानवी आज जन धात्री,
मानव सहचरि जीवन छात्री,
भीत न होओ, प्रिय, अब नारी
लेती जागृति की अँगड़ाई !

मुझको अब नारी तन धोना
देह मोह निज तुमको खोना,

तुम सृजन शक्ति बन मेरे उर में आना
तुम चिर प्रतीति बन जन मन में तुम आना
प्राणों में स्वर्गिक सौरभ मधुर बसाओ !

बन एक प्राण, दो देह अभिन्न हृदय हों
प्रत्यय हो मन में संशय नहीं उदय हो
उर की उर जीवन की जीवन बन जाओ
तुम आती हो तो आओ प्रेयसि आओ !

युवती

मैं आती हूँ जीवन आती हूँ प्रियतम
हृदयों का प्रेम प्रकाश नहीं तन का तम
तुम खोल हृदय पट प्रिय फिर मुझे बुलाओ
युवक—तुम आओ मानसि आओ प्रेयसि आओ !

प्रिय मैं ही सीता मैं सावित्री राधा
हरती आई जग जीवन पथ की बाधा
पा मातृ शक्ति, जन मंगल प्राण मनाओ !
युवक—आओ हे आभा देही देवी आओ !

मैं गार्गी घोषा सूर्या अदिति प्रवीणा
भारती मालती मल्ली ललना नवीना
जन जन के उर में तुम आह्वान उठाओ !
युवक—आओ हे, युग की दिव्य विभा बन आओ !
मैं दुर्गा लक्ष्मी काली पावन चरणा
मैं भक्ति शक्ति सौन्दर्य माधुरी करुणा

हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

तम का विनाश, युग का निर्माण कराओ !
युवक—आओ हे, अग जीवन आओ तुम आओ !

कब से मुख पर धर लज्जा का अवगुंठन,
मैं बनी मनुज की मोह वासना की तन,
मैं तुम्हें शक्ति देती व्यवधान हटाओ,
युवक—आओ, उषा बन, अनवगुंठित, आओ !

तीसरा दृश्य

(६)

युवती

मैं आई, फिर प्रियतम, आई !
युग-युग के स्वप्नों की मेरी
देखो तुम छिपती परछाईं !
तुम क्या नर थे मैं क्या नारी,
वधू प्रवीना, पति अधिकारी
तुमने मेरी फूल देह पर,
तप्त लालसा सेज सजाई !

मैं मानवी आज जन धात्री,
मानव सहचरि, जीवन छात्री,
भीत न होओ, प्रिय, अब नारी
लेती जागृति की अँगड़ाई !

मुझको अब नारी तन खोना,
देह मोह मिथ तुमको लोना,

मैं यदि फिसलूँगी युग पथ पर
प्रिय, तुम होगे उत्तरदायी!

जिसका आज देह की छाया
आभा पुन बनेगी माया
संस्कारों की भ्रांति धरा पर
स्वर्ण क्रांति लाएगी स्थायी!

युग-युग के रूपों की मेरी
देखो, प्रिय, छिपती परछाईं!

(७)

सीता राम सीता राम
क्या नाम है प्रणाम!

हम नर छाया, कुल नारी,
पतिव्रता, पति की प्यारी
गृह दासी, सुत महतारी
कलह अविद्या अँधियारी!

लज्जा लज्जामय गुण ग्राम,
सीता राम, सीता राम!

जब घर से बाहर जाती
छुईमुई सी कुम्हलाती
देख जनों को सकुचाती
नयन लालसा उकसाती!

करतीं नित घर के सब काम,
सीता राम, सीता राम !

युग-युग से हम अवगुण्ठित,
गृह की दीप शिखा कम्पित
देह मोह में ही सीमित
पुरुष मात्र से आतंकित !
विधि सदय से हम पर वाम,
सीता राम, सीता राम !

कौन जगाता हमें स्वजन
उर के तम में भर कम्पन,
दबा राख में पावन कण
उसे जगा दें प्राण पवन !
प्रभु अबला का लें कर थाम
सीता राम, सीता राम !

(८)

राधे श्याम, राधे श्याम,
विश्व रूप हे ललाम !

आई थी एक बार
हम तन मन प्राण वार
सुन मधु मुरली पुकार
छोड़ नेह गेह द्वार,

बजी बाँसुरी सुनहरी टेर

तज निज सब काज काम,
राधे श्याम राधे श्याम !

यमुना की कल तरंग
बनीं चपल भृकुटि भंग
अंग-अंग में उमंग
नृत्य गीत रास रंग,
अधरों पर मधुर नाम
राधे श्याम राधे श्याम !

बही गीति काव्य धार
रस के निर्झर अपार,
संस्कृति बह भी उबार
जीवन था नहीं भार,
जन मन थे पूर्ण काम
राधे श्याम राधे श्याम !

निखिल नायिका ललाम
हम व्रज की रहीं बाम,
प्रीति रीति में प्रकाम
बिकीं बंधी बिना दाम
मधुर भाव में अकाम,
राधे श्याम राधे श्याम !

कौन भाव यह कुमार
करता फिर से प्रचार,
किसलिए कुलीन मार
करे फिर धरामिसार ?
ऐसा वह कौन काम,
राधे स्याम, राधे श्याम !

(६)

बुद्ध की शरण,
धम की शरण,
संघ की शरण !

इच्छा मानव दुख का कारण
इच्छा का यदि करें निवारण
तो जग जीवन हो फिर पावन
चिर निर्वाण मिले भव तारण !
बुद्ध की शरण,

सेवा ही हो जीवन का व्रत,
सेवा ही में हो जीवन रत,
सेवा हित जो हो मस्तक नत
बोधिसत्व के मिलें शुचि चरण !
बुद्ध की शरण

तज निज सब काज काम,
राधे श्याम राधे श्याम।

यमुना की कल तरंग
बनी चपल भृकुटि भंग
अंग-अंग में उमंग
नृत्य गीत रास रंग,
अधरों पर मधुर नाम
राधे श्याम, राधे श्याम।

बही गीति काव्य धार
रस के निर्झर अपार
संस्कृति बह थी उदार
जीवन था नहीं भार,
जन मन थे पूर्ण काम
राधे श्याम राधे श्याम।

निखिल नायिका ललाम
हम ब्रज की रहीं वाम,
प्रीति रीति में अकाम,
बिकीं बँधी बिना दाम
मधुर भाव में सकाम
राधे श्याम राधे श्याम।

कौन आज यह कुमार
करता फिर से प्रचार,
किसलिए कुलीन मार
करे फिर धराभिसार ?
ऐसा यह कौन काम,
राधे श्याम राधे श्याम !

(६)

बुद्ध की शरण,
धर्म की शरण
संघ की शरण !

इच्छा मानव दुख का कारण,
इच्छा का यदि करें निवारण
तो यम जीवन हो फिर पावन
चिर निर्वाण मिले भव तारण !
बुद्ध की शरण

सेवा ही हो जीवन का व्रत,
सेवा ही में हो जीवन रत,
सेवा हित जो हो मस्तक नत
बोधिसत्व के मिलें शुचि चरण !
बुद्ध की शरण,

जीव मात्र पर बरसे करुणा,
मानव उर में हरसे करुणा
सेवा के हित तरसे करुणा,
मिटें शोक सब जन्म रुज मरण!
बुद्ध की शरण,

छोड़ो हे मिथ्या माया जग
रोग जरा भय मृत्यु के विहग
पकड़ो भिक्षु भिक्षुणी का मग
जीवन की भय भीति हो हरण!
बुद्ध की शरण

किन्तु उच्छ्वसित हो रह रह मन
प्राणों में भरता क्यों क्रंदन,
स्वप्नाकुल क्यों होते लोचन,
भिक्षु, ज्ञात क्या तुमको कारण?
बुद्ध की शरण,
धर्म की शरण,
संघ की शरण!

चौथा दृश्य

(१०)

नेपथ्य गीत

जीवन में जितना डूबोगे उतना ही तुम उकताओगे,
मधु में लिपटा कर पंख मधुप, फिर सहज नहीं उड़ पाओगे!

सुख को तृष्णा मानलो विषाद सुख दुख में जो तुम धीर रहो,
दुख में तुम रुकना सीखोगे प्रिय, सुख में चरण बढ़ाओगे!

जो सहज तैर लेते जग में, आगे बढ़ पार वही पाते,
तुम रँगे लालसा रँग में जो, गेरुवा पहन के आओगे!

आसक्ति विरक्ति अकेले ही घूँघट पट नहीं उठाएगी,
जो निरत हुए पछताओगे, जो विरत हुए क्या पाओगे?

रति और विरति के पुलिनों में बहती जीवन रस की धारा
रति से रस लोगे और विरति से रस का मूल्य लगाओगे!

नारी में फिर साकार हो रही नव्य चेतना जीवन को
तुम त्याग मोम का सृजन भावना में फिर नवल डुबाओगे!

(११)

रूप शिखा
आधुनिका!
फूलों की तन-सुवास,
लहरों का चरण लास
शशि का मधु सुधा हास
विद्युत् का भ्रू विलास
रूप शिखा!

भाल पर न बेंदि सुघर
माँग में न सेंदुर बर

जीव मात्र पर बरसे करुणा,
मानव उर में हुरसे करुणा,
सेवा के हित तरसे करुणा,
मिटें शोक सब जन्म मरण !

बुद्ध की शरण,

छोड़ो हे मिथ्या माया जग
रोग जरा भय मृत्यु के विहग,
पकड़ो भिक्खु भिक्खुणी का मग
जीवन की भय भीति हो हरण !

बुद्ध की शरण,

किन्तु उच्छ्वसित हो रह रह मन
प्राणों में भरता क्यों क्रंदन
स्वप्नाकुल क्यों होते लोचन
भिक्खु, ज्ञात क्या तुमको कारण ?

बुद्ध की शरण,
धर्म की शरण
संघ की शरण !

चौथा दृश्य

(१०)

नेपथ्य गीत

जीवन में जितना डूबोगे उतना ही तुम उकताओगे,
मधु में लिपटा कर पंख,मधुप फिर सहज नहीं उड़ पाओगे !

सुख की तृष्णा बनती विषाद, सुख दुख में जो तुम धीर रहो,
दुख में तुम हँसना सीखोगे, प्रिय, सुख में चरण बढ़ाओगे !

जो सहज तैर लेते जग में, आगे बढ़ पार वही पाते,
तुम रँगे लालसा रँग में जो, गेरुवा पहन के आओगे !

आसक्ति विरक्ति अकेले ही घूँघट पट नहीं उठाएगी,
जो निरत हुए पछताओगे, जो विरत हुए क्या पाओगे ?

रति और विरति के पुलिनों में बहती जीवन रस की धारा,
रति से रस भोगे और विरति से रस का मूल्य लगाओगे !

नारी में फिर साकार हो रही नव्य चेतना जीवन की
तुम त्याग भोग को सूक्ष्म भावना में फिर नवल डुबाओगे !

(११)

रूप शिखा
आधुनिका !
फूलों की तन-सुवास,
लहरों का चरण लास
शशि का मधु सुधा हास
विद्युत् का भ्रू विलास
रूप शिखा !

भाल पर न बेंदि सुघर
माँग में न सेंदुर भर

जीव मात्र पर बरसे करुणा,
मानव उर में हुरसे करुणा,
सेवा के हित तरसे करुणा,
मिटें शोक सब जन्म रुज मरण !
बुद्ध की शरण,

छोड़ो हे मिथ्या माया जग
रोग जरा भय मृत्यु के विहग,
पकड़ो भिक्षु भिक्षुणी का मग
जीवन की भय भीति हो हरण !
बुद्ध की शरण,

किन्तु उच्छ्वसित हो रह रह मन
प्राणों में भरता क्यों क्रंदन,
स्वप्नाकुल क्यों होते लोचन
भिक्षु, ज्ञात क्या तुमको कारण ?
बुद्ध की शरण
धर्म की शरण
संघ की शरण !

चौथा दृश्य

(१०)

नेपथ्य गीत

जीवन में जितना डूबोगे उतना ही तुम उकताओगे,
मधु में लिपटा कर पंख,मधुप फिर सहज नहीं उड़ पाओगे !

सुख को तृष्णा बनतो विषाद सुख दुख में जो तुम धीर रहो,
दुख में तुम रुकना सीखोगे, प्रिय, सुख में चरण बढ़ाओगे!

जो सहज तैर लेते जग में, आगे बढ़ पार वही पाते,
तुम रँगे लालसा रँग में जो, गेरुवा पहन के आओगे!

आसक्ति विरक्ति अकेले ही घूँघट पट नहीं उठाएँगी,
जो निरत हुए पछताओगे, जो विरत हुए क्या पाओगे?

रति और विरति के पुलिनों में बहती जीवन रस की धारा,
रति से रस लोगे और विरति से रस का मूल्य लगाओगे!

नारी में फिर साकार हो रही नव्य चेतना जीवन की
तुम त्याग भोग का सृजन भावना में फिर नवल डुबाओगे!

(११)

रूप शिखा
आधुनिका!
फूलों की तन-सुवास,
लहरों का चरण लास
शशि का मधु सुधा हास
विद्युत् का भ्रू विलास
रूप शिखा!

भाल पर न बेंदि मुखर
माँग में न सेंदुर बर

रँगतीं हम मधुर अधर
भ्रू धनु में कज्जल भर !
आधुनिका !

छूट गई पट संस्कृति
हृदय रहित मधुराकृति,
वे रहीं प्रगति की गति
हम नव युग की भारति
रूप शिखा !

युवक

शोभा का है प्रिय तन
मुक्त नहीं तन से मन
प्रिये, धीर धरो चरण
रिक्त क्या न यह जीवन ?
आधुनिका !

आई घर से बाहर,
चकाचौंध नयनों पर
छोड़ मध्य युग की डर
मानवी बनी न निखर !
रूप शिखा !

तुम थीं भारत महिमा
आज ध्वस्त युग प्रतिमा !

तुम में क्या उर गरिमा ?
केवल तन की महिमा !
आधुनिका !

(१२)

हम प्रीति शिखा
प्रति आधुनिका
पथ रहीं दिखा !

हम गोरी भोरी प्रिय परियाँ
हम अस्ताचल की अप्सरियाँ,
मधु मुखर प्रणय की निर्झरियाँ,
हम नव युग ज्योति उजागरियाँ,
हम प्रीति शिखा !

हम पढ़ी लिखीं नव नागरियाँ
गोरस न, सुरा की गागरियाँ
हम नहीं गृहों की चाकरियाँ,
हम नृत्य निपुण गुण आगरियाँ,
प्रति आधुनिका !

अंगों पर देतीं विरल वसन
जिससे विमुक्त निखरे यौवन
हम तोड़ प्रणय के कटु बंधन,
मोहित करतीं जन-जन के मन
हम प्रीति शिखा !

तन पर म हमारे भवगुण्ठन
भर हाथ पकड़ लेतीं हम मन,
मिलतीं सब से खुल के गोपन
क्या हम आदर्श नहीं रमी जन ?
भति आधुनिका !

युवक

प्रिय सखि, तुम पूरब में भाईं
पर तनिक नहीं जागृति आइ
से फूल विहग की सुघराई,
तुम विमल स्वप्न में अलसाई
भयि प्रीति शिखा !

तुमको प्रिय प्राणों का जीवन
भति भरा स्नायुओं में स्पंदन
तुम हो युग जीवन की स्पष्ट
यह प्रगति नहीं री चपल चरण,
भति आधुनिका !

पाँचवाँ दृश्य

(११)

नेपथ्य गीत

शारदे !
शारद हासिनी
तम विनाशिनी, जग प्रकाशिनी,

नव स्मिति की ज्योत्स्ना बरसाओ
वसुधा पर, जीवन विकासिनी !
शारदे !

नवल नीलिमा से नत अम्बर,
निर्मल सुख से कंपित सरि सर,
उतरो हे आभामयि भू पर,
कुमुद भासनी !

शुभ्र चेतना सी नव विखरो,
भाव लहरियों को छू निखरो,
पृथ्वी के तृण-तृण पर बिखरो
ज्योति लासिनी !

स्वप्न जड़ित भू रज हो चेतन,
तन से ज्योत्स्ना सा छिटके मन,
युग तारा से झरें नव किरण
हृदय वासिनी !

आओ नव नारी बन आओ,
जग को शोभा में लिपटाओ
नव जीवन की सुधा पिलाओ
श्री विलासिनी !

(१४)

नेपथ्य गीत

तारागों सी शुचि आत्माएँ मैं आज धरा पर भेजूँगी,
नव भाव शक्तियों से भू को मैं फिर से सहज सहेजूँगी !
मैं ही सोई श्रम के सम में, मैं ही सत रगों में जगती
मैं नर नारी में आज छिपा हो जीवन के भुज भेटूँगी !
जो जन मन भाव उठे ऊपर मैं फिर धरती पर उतरूँगी
मानव के उर में कर प्रवेश जग में नव जीवन वितरूँगी !
लो, आज तुम्हें छूती हूँ मैं अपने आभा के अंचल से
मानव के स्वर्गिक स्वप्नों को मैं जीवन की देही दूँगी !

छठा दृश्य

(१५)

युवक

मानिनि, अधिक विलम्ब मत करो !
ओ मानव की स्वर्णिम मानसि
उतरो अब धरती पर उतरो !

युवती

प्रिय मैं उतर धरा पर आई !
उदय शिखर पर नव युग का अब
देखो स्वर्ण ध्वजा फहराई !

युवक

निखिल सृष्टि की बन तुम आशय
जीवन की सकल्प असशय
अन्तर्मन की चिर अभिलाषा
सृजन तत्व की सार बन प्रणय,
युग युग के जग जीवन के
चिर ज्ञान कला से प्रयसि निखरो !
मानव की प्रिय मानसि, बिखरो
तुम फिर से धरती पर बिखरो !

युवती

मानव उर की आशा के पर
जीवन के स्वप्नों का तन धर
सृजन चेतना ही सदेह तुम
उर में मधुर प्रतीति बन अमर

आज सृजन आनन्द से उमँग
मैंने जीवन रज लिपटाई !
पुन: सूक्ष्म से स्थूल बनी मैं
छिपी ज्योति में सब परछाईं !

प्रिय, मैं उतर धरा पर आई !

(१८)

युवती

धिक हम कैसे प्रेम पथिक!
प्रीति सूत्र में बँध कर जो हम
बन सकते भू के न श्रमिक!

आओ, भू को आज बुहारें
युग युग का मग कर्दम झारें,
जीवन का गृह प्रथम सँवारें
जन श्रम से शोभित हों दिक!

किया नहीं सौंदर्य सृजन जो
किया नहीं माधुर्य वहन जो
रे किस लिए मनुज जीवन जो
जन में नहीं विभव आत्मिक!

पिया नहीं जो जीवन मधु सुख
मिला न जो भू रचना में सुख
तो क्यों नर नारी हो उन्मुख,
युग्म प्रीति के रिक्त रसिक!

प्रिय तुम बीज—प्राण तुम भरती
अंकुर सी उठ सृष्टि निखरती

जीवन हरियाली मन हरखो
प्रीति हमारी नहीं क्षणिक!

आओ, भरें धरा पर प्लावन
स्वेद सिक्त श्रम का चिर पावन
युग्म प्रीति का विश्व जागरण
गायें मुक्त पिकी नव पिक!

(१९)

युवक युवतियाँ

प्रतीति प्रीति प्राण में
चरण धरो चरण धरो
लिए हो हाथ हाथ में,
न तुम डरो न तुम डरो!

मनुष्यता रही पुकार
छोड़ देह मोह भार
खोल रुद्ध हृदय द्वार,
देह द्रोह को बिसार!
नाम के कसक पक
को मनुष्य के हरो!

महान् क्रांति आज हो,
अखंड राम राज हो

हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

अभीष्ट लोक काज हो,
सुसभ्य जन समाज हो!
उठो, सदुच्च ध्येय, धैर्य
शौर्य, वीर्य को वरो!

न रक्तपात युद्ध हो
न ऊर्ध्व शक्ति रुद्ध हो
मनुष्य शुद्ध बुद्ध हो
विवेक मम न क्षुब्ध हो,
अभय अमर हो मृत्यु आज
साथ साथ जो मरो!

क्षुधार्त रे असंख्य प्राण
मग्न देह बुद्धि म्लान,
रोग व्याधि से न त्राण,
निश्चय लो आज ठान,
तुम प्रथम मनुष्य हो
न युग्म मात्र स्त्री नरो!

विनम्र शिष्ट निरभिमान
पुरुष नारि हों समान,
प्रीति प्राण, मुक्त ज्ञान,
मुक्त कला नृत्य गान
स्वर्ग तुल्य हो धरा,
जघन्य रूढ़ियों झरो!

नव युवतियाँ

ये पारिजात प्रिय पूजन के
ये आम्र मौर अभिनंदन के
ये सित सरोज पावन मन के
अपलक गुलाब प्रेमी जन के

यह संस्कृति का संदेश नवल
तुम ग्रहण करो तुम ग्रहण करो!
यह शान्ति सभ्यता की प्रियतम
तुम वहन करो तुम वहन करो!

भीनी चंपा नव भावों की
यह जुही सुघर रुचि चावों की
मृदु शीलमयी प्रिय मौलसिरी
उर गरिमा से छलकी भरी

तुम स्नेह दया सहृदयता से
जन मन की ईर्ष्या घृणा हरो!

ये कला की कलियाँ स्मृति की
यह कुंद कली निश्छल स्मिति की
स्मित चारु चमेली सज्जा की
नत छुईमुई प्रिय सज्जा की

तुम नव जीवन की श्री शोभा,
सुख आशा अमद प्राण भरो !

मंजरि अशोक की मगमग्मय,
रोमिल शिरीष शोभा में लय
ये हँस हँस झरते हर सिंगार,
यह पुलकाकुल कचनार भार
तुम विनय साधना सत्य त्याग से
भू बाधाएं निखिल हरो !

स्वप्नों की कुई मधुर मोहन
पाटल विराग से गैरिक तन
कामिनी सती सी स्वच्छ सुघर,
स्वर्णिम गेंदा सतोप अमर !
नव मानवता की सौरभ से
तुम वसुधरा को प्राण भरो !

ये पौरुष से रक्तिम पलाश
ये स्वम शांति के अमलतास
मालती भरी उर ममता से
सुर चंदन सौरभ क्षमता से,
मानव जीवन के योग्य बना
इस पृथ्वी को मानव बिखरो !
यह संस्कृति का संदेश नवल !

युवक—प्रतीति प्रीति प्राण में
धरण धरो, धरण धरो!
युवतियाँ—हृदय सुमन प्रणय सुरभि
ग्रहण करो ग्रहण करो!
युवक—लिए हो हाथ हाथ में
न तुम डरो न तुम डरो!
युवतियाँ—सृजन विकास की शिखा
वहन करो वहन करो!

शुभ नव जीवन की श्री शोभा
मुक्त भाषा वैभव आज वरो !

मंजरि अशोक की मगनमय
रोमिल शिरीष शोभा में लय
ये हँस हँस झरते हर सिंगार,
यह पुलकाकुल कचनार डार
शुभ विनय साधना सत्य त्याग से
भू बाधाएँ निखिल हरो !

स्वप्नों की छुई मधुर मोहन,
पाटल विराग से गैरिक तन
कामिनी सती सी स्वच्छ सुघर
स्वर्णिम मेंवा सतोष अमर !
नव मानवता की सौरभ से
शुभ वसुंधरा को आज भरो !

ये पौरुष से रक्तिम पलाश
ये स्वर्ण क्रांति के अमलतास
मालती भरी उर ममता से,
सुर चंदन सौरभ क्षमता से
मानव जीवन के योग्य बना
इस पृथ्वी को मानव विचरो !
यह संस्कृति का संदेश नवल !

युवक—प्रतीति प्रीति प्राण में
वरण करो वरण करो!

युवतियाँ—हृदय सुमन प्रणय सुरभि
ग्रहण करो ग्रहण करो!

युवक—लिए हों हाथ हाथ में
न तुम डरो न तुम डरो!

युवतियाँ—सृजन विकास की दिशा
वहन करो वहन करो!

स्मृति

परित्यक्ता वैदेही सी ही
मम हृदय कामना उठी निखर
प्राणों की ममता, मधु स्नात
कृश, शरद शुभ्र लगती सुंदर !

प्रेयसि की मुख छवि मेघ मुक्त
शशि रेखा सी उगती मन में
नीरव नभ में विद्युत् घन सी
एकाकी स्मृति चमकी क्षण में !

ज्योत्स्ना में झंझा से कंपित
हलकी फुहार सी पड़ती झर
वह भीगी स्मृति, मानस तट पर
छाया लहरी सी बिखर-बिखर !

सुख दुख की लपटों में लिपटी,
भू के अंगारों पर पग धर,

यह बढ़ती स्वप्नों के पथ पर
सब अग्नि परीक्षाएँ दे कर।

अब प्रेमी मन वह नहीं रहा
शुभ प्रेम रह गया है केवल,
प्रेयसि स्मृति भी वह नहीं रही
भावना रह गई विरहोच्छ्वास।

बाहर जो कुछ भी हो बदला
मन का पट बदल गया भीतर
विकसित होगी चेतना उभर
परिणत जब जीवन का सगर।

मधु गीत

नव वसंत क्या लाया !
प्राणों की घाटी में फिर
फूलों का पावक छाया !

धुन कोमल का दाहक कूजन
मधुपों का उन्मादक गुंजन
स्वप्नों मे मंतर मर्मर मर
कैसा गीत जगाया !

रँग रँग की इच्छाएँ हँस हँस
मन को पागल करतीं बरबस
पग-पग पर रुकती मैं उन्मन
किसने मुझे लुभाया !

घिरते धाज क्षितिज में क्यों घन
सौरभ के, भावों के मादन

चस वसंत के नभ में मंथर
सावन क्यों घिर आया ?
अधरों में नव कलियों की स्मित,
पलकों में स्मृति की झर अविदित
मन समीर के पत्रों में
उर में समुद्र लहराया ?

भाव स्मृति

वन फूलों की तरु डाली में
        गाती यह निर्दय गिरि कोयल
काले कौओं के बीच पली
        मुँहजली प्राण करती विह्वल !

कोकिल का श्वासों का गायन
        गायन में मर्म व्यथा मादन
उस मूक व्यथा में लिपटी स्मृति,
        स्मृति पट में प्रीति कथा पावन !

यह प्रीति-तुम्हारी ही प्रिय निधि
        निधि, चिर शोभा की ! (जो अनन्त
कलि कुसुमों के अधरों में खिल
        बनती रहती जीवन वसन्त !)

उस शोभा का स्वप्नों का तन,
        (जिन स्वप्नों से विस्मित लोचन !

जो स्वप्न मूर्त हो सके नहीं,
भरते उर में स्वर्णिम गुंजन!)

उस तन की भाव ग्रथित आकृति,—
(ज्यों धूपछाँह पट पर अंकित!)
आकृति की खोई सी रेखा
लहरों में बेला सी मज्जित!

यौवन मेरा वह स्वप्न सखी,
छवि रेखाए जिसमें ओझल,
तुम अंतर्मुख शोभा धारा
बहती मन प्राणों में शीतल!

प्राणों की फूलों की डाली
स्मृति की छाया मधु की कोमल
यह गीति व्यथा अंतर्मुख स्वर
वह प्रीति कथा धारा निश्छल!

भाव रूप

गंध अमित !
रूप तुम आईं मधुवन
हृदय कुंज छवि भ्रमित !

सूक्ष्म सुरभि रे अनाम,
पुलकित मन, तन सकाम,
अश्रुत संगीत मंद्र
रोम रंध्र में झंकृत !

ध्यान मौन प्रीति कुंज,
सन्निधि मधु गंध पुंज,
कनक शिखा तुम अकंप
उर प्रदीप में स्थित नित !

स्पर्श अमित हर्ष स्रोत,
निःश्रेयस् ओतप्रोत,
शोभा की पुष्प वृष्टि
दृष्टि-शून्य सुरधनु स्मित !

मानव उर मोह मग्न
बाह्य रूप राशि मग्न
स्पर्श रूप जो अरूप
सत्य ज्योति स्पर्श रहित !

तुम्हें देख मुँदे नयन
अंतस् में घुसे गहन
सत्य वही जिसमें तुम
भाव रूप अभिव्यंजित !

भाव रूप

गंध अमित !
कब तुम आईं अगुरु
हृदय कुंज छव ध्वनित !

सूक्ष्म सुरभि रे अनाम,
पुलकित मन, तन सकाम,
अश्रुत संगीत मंत्र
रोम रंध्र में झंकृत !

ध्यान मौन प्रीति कुंज
सन्निधि मधु गंध पुंज
कनक शिखा तुम अकंप
उर प्रदीप में स्मित नित !

स्पर्श स्रवित हर्ष स्रोत
निःश्रेयस् ओतप्रोत
शोभा की पुष्प वृष्टि
दृष्टि-शून्य सुरधनु स्मित !

मानव उर मोह मग्न
बाह्य रूप राशि लग्न
व्यर्थ रूप, जो अरूप
सत्य ज्योति स्पर्श रहित !

तुम्हें देख मुँदे नयन
अंतस् में खुले मधुन
सत्य वही जिसमें तुम
भाव रूप अभिव्यंजित !

भाव रूप

गंध अमित !
रूप तुम आई अपरूप
हृदय कुंज छवि ध्वनित !

सूक्ष्म सुरभि रे अनाम,
पुलकित मन, तन सकाम,
अश्रुत संगीत मग्न
रोम रन्ध्र में झंकृत !

ध्यान लीन प्रीति कुंज
सन्निधि मधु गंध पुंज
कनक शिखा तुम अकंप
उर प्रदीप में स्थित नित !

स्पर्श स्रवित हर्ष स्रोत
निःश्रेयस् ओतप्रोत
शोभा की पुण्य वृष्टि
वृष्टि-शून्य सुरधनु स्मित !

मानव उर मोह मग्न
बाह्य रूप राशि मग्न
व्यर्थ रूप, जो अरूप
सत्य ज्योति स्पर्श रहित।

तुम्हें देख मूँदि नयन
अंतस् में सूझे गहन
सत्य वही जिसमें तुम
भाव रूप अभिव्यंजित।

मनोभव

पावक की अंगुलियाँ बजातीं
भावों की जग बीणा,
मौन हृदय तंत्री से करता
कौन पुरुष रस क्रीड़ा ?—
प्राणों की माया !

आज व्योम के अंबर से हँस
प्रेम उतर आया —

जीवन शोभा का रथ उत्सव
अंतर में भर स्वर्णिम मधु रव
उदय हुआ नव रूप मनोभव
रोम हर्ष छाया !

सुख दुख श्रम का अंत न उद्गम,
रवि प्रकाश में भी गोपन तम

-

जगी ज्योति मानस में निर्भ्रम
कनक गौर काया!

पावक भ्रम प्रेम बस बीणा,
कमा हुई रस सिद्ध प्रवीणा —

उज्वल समल कलुष का आनन,
पड़ उर में आया नव चेतन
पूर्ण हुई जन भू उसको पा
वह प्रकाश-छाया,
प्राणों की माया!

पुनर्मूल्यांकन

इंद्रिय सुख से रहित मान मानव आत्मा को
बना गए तुम जीवन को मरुथल
आशाकांक्षा को मृगजल !

काम दग्ध है क्या सोचा तुमने ?—असंग बन
खोल न पाए काम ग्रंथि तुम मुक्त न कर पाए
निज निर्मम इंद्रिय कुंठित प्राण क्षुधित
अंतस्तम !

उदर क्षुधा को स्वीकृति दे, मध्य अर्थ भित्ति पर
जन समाज का उठा भव्य प्रासाद —
अस्थि पंजर स्फटिककोज्ज्वल !

काम उपेक्षित युगों युगों से, मनुजोचित संस्कार
न कर पाया पशु स्तर पर कलुष पंक में सना
वासना विह्वल !

इंद्रियजित् तुम ? धिक अबोध ! तन मन प्राणों से
स्वर्णिम आत्मा को विलगा कर

स्वर्ग जीव को धरती से कर वंचित,—

नष्ट हुए मिथ्याऽधकार में भटक स्वयं तुम,
तन मन इंद्रिय धार्मिक पोषण रहित
पुण्य स्वर्गों से कुम्हला, हुए अविद्या तम दूषित,—
जर्जर, जीवन-मृत!

धन्य आत्म द्रष्टा स्रष्टा की सृजन कला का
पी न सके तुम स्वच्छ विषय मधु,
आनन्दामृत!

ताप हीन कर रवि प्रकाश को,
प्राण हीन मानव आत्मा को,
ब्रह्म रंध्र से मुक्ति शून्य में
तुम कर गए निष्फल मूर्छित,—
जीर्ण वस्त्रवत्,
देह प्राण मन स्पर्श कम्पित!

निश्चय ही दुर्धर्ष समर घन युग के सम्मुख,
मानव आत्मा को जाग्रत् हो
भीतर से होना नव दीपित
बाहर से विस्तृत, नव विकसित!

मिट जाए चिर का कलंक (भीतर असमर्थ है मर्त्य!)
मुक्त हो काम द्रोह से (काम दासता जो!)
मानव पाए स्वरूप निज,

पुनर्मूल्यांकन

इंद्रिय सुख से रहित मान मानव आत्मा को
बना गए तुम जीवन को मरुथल
आत्माकांक्षा को मृगजल !

काम दग्ध है क्या सोचा तुमने ?—प्रसंग बन
खोल न पाए काम ग्रंथि तुम, मुक्त न कर पाए
निज निर्मम इंद्रिय कुंठित प्राण क्षुधित
अंतस्तल !

उदर क्षुधा को स्वीकृति दे अब अर्थ भित्ति पर
जन समाज का उठता नव प्रासाद —
अस्थि पंजर स्फटिकोज्ज्वल !

काम उपेक्षित युगों युगों से, मनुजोचित संस्कार
न कर पाया पशु स्तर पर कलुष पंक में सना,
वासना विह्वल !

इंद्रियजित् तुम ? धिक प्रबोध ! तम मन प्राणों से
स्वर्णिम आत्मा को विलगा कर

स्वर्ग बीज को धरती से कर वंचित,—

नष्ट हुए विद्याऽन्धकार में भटक स्वयं तुम,
तन मन इंद्रिय आत्मिक पोषण रहित
पुष्प स्तबकों-से कुम्हला, हुए अविद्या तम कुंठित,—
जजर, जीवन-मृत !

धन्य आत्म द्रष्टा, स्रष्टा की सृजन कला का
पी न सके तुम स्वच्छ विषय मधु,
आनन्दामृत !

ताप हीन कर रवि प्रकाश को,
प्राण हीन मानव आत्मा को
ब्रह्म रस से मुक्ति शून्य में
तम कर गए निष्फल कुंठित,—
जीर्ण वस्त्रवत्
देह प्राण मन स्पर्श कलंकित !

निश्चय ही दुर्धर्ष समर जन युग के सम्मुख,
मानव आत्मा को जाग्रत् हो
भीतर से होगा नव दीपित
बाहर से विस्तृत नव विकसित !

मिट जाए चिर का कलंक (भीतर अमर्त्य है मर्त्य !)
मुक्त हो काम द्रोह से (काम वासना जो !)
मानव पाए स्वरूप निज,

तन मन प्राणों से ज्योतित,
नख शिख संयोजित !

स्वीकृत कर सम्पूर्ण प्रकृति को, पूर्ण मनुज को
फिर से हो जीवन पदार्थ का, मनोद्रव्य का
स्थूल सूक्ष्म का सागर मंथन,
नव मूल्यांकन !

निश्चेतन उपचेतन भुवनों को दीपित कर,
प्राण कामना का पंकिल मुख धोकर
उसको स्वस्थ मूल्य दे मानव
मिथ स्वीकृति दे नूतन !

तब देखे मानव आत्मा को
पूर्ण कलाओं में वह विकसित
बाहर भीतर के ऐश्वर्यों से आलोकित
स्वयं प्रकाशित,—

पावनता मानव प्रेम शोभा महिमा की
जीवन प्रतिनिधि बन धरणी को
स्वर्ग बना देगी वह निश्चित !

ooo